

॥ हरिःॐ ॥

हरिःॐ आश्रम

‘श्रीभगवान की अनुभूति के हेतु पावन स्थल’

लेखक :

डॉ. रमेश भट्ट (Ph.D.)

अनुवादक :

(Ph.D.)

संपादक :

हरिःॐ आश्रम प्रकाशन, सुरत

हरिःॐ आश्रम ■

© हरिःॐ आश्रम, सुरत-३९५००५

हरिःॐ आश्रम, नडियाद-३८७००१.

- प्रकाशक : हरिःॐ आश्रम,
कुरुक्षेत्र, जहाँगीरपुरा, सुरत-३९५००५.
फोन : (०२६१) २७६५५६४
- संस्करण : प्रथम प्रत-१०००
- मूल्य : Rs. 10/- (दस रूपये)
- प्राप्तिस्थान : (१) हरिःॐ आश्रम, सुरत-३९५००५.
(२) हरिःॐ आश्रम,
पो. बो. नं. ७४, नडियाद-३८७००१.
फोन : (०२६८) २५६७७९४
- अक्षरांकन : दुर्गा प्रिन्टरी,
अवनिकापार्क सोसायटी, खानपुर,
अहमदाबाद-३८०००१.
फोन : (०७९) २५५०२६२३
- मुद्रक : साहित्य मुद्रणालय प्रा. लि.
सिटी मिल कम्पाउन्ड,
कांकरीया रोड, अहमदाबाद-३८००२२.
फोन : (०७९) २५४६९१०१

■
॥ हरिःॐ ॥

● समर्पणांजलि ●

पू. श्रीमोटा की मौन-एकान्त साधना के सिद्धांत से अत्यंत प्रभावित होकर, नियमितरूप से हर साल २१ दिनों के लिए हरिःॐ आश्रम, सुरत के मौनखण्ड में बैठकर साधना करने वाले अभ्यासु साधक जीव, हिन्दी-अंग्रेजी भाषा एवम् भारतीय शास्त्र के अनेक ग्रंथों के प्रखर अभ्यासी प्राध्यापक, अंतरंग जीवन में ज्ञानमार्ग से प्रभु-परमात्मा को प्राप्त करने के मनोमंथन में व्यस्त, स्वामी विवेकानंद आश्रम, बेंगलुरु के निवासी और स्वामीजी के पुस्तको के अंग्रेजी-हिन्दी भाषा में अनुवादक, पू. श्रीमोटा के पुस्तको के प्रखर अभ्यासु एवम् हिन्दी-अंग्रेजी संस्करण के संशोधन कार्य (Proof Reading) में सहायक, आदरणीय प्राध्यापक

को यह पुस्तक का प्रथम संस्करण अत्यंत प्रेम और आदरपूर्वक समर्पण करते हुए हरिःॐ आश्रम, सुरत का ट्रस्टी मंडल प्रेम और आभार की अनुभूति व्यक्त करता है ।

— ट्रस्टी मंडल

दि. : २५-७-२०१०
संवत् २०६६, गुरुपूर्णिमा

हरिःॐ आश्रम, सुरत

• निवेदन •

(प्रथम संस्करण)

हरिःॐ आश्रम, नडियाद-सुरत की स्थापना पू. श्रीमोटा की प्रेरणा से सन १९५५-५६ में हुई। साधकों को प्रभु-भक्ति के पथ पर चलने के लिए सुविधापूर्ण मौनकक्ष निवास करने के लिए बनाये हैं। इस आश्रम की संचालन शैली अन्य आश्रमों से एकदम निराली है। साधक हिन्दु, इसाई, मुस्लिम, पारसी कोई भी जाति या धर्म का हो पूर्ण स्वतंत्रता से अपनी साधना-पद्धति से साधना कर सकता है। प्रस्तुत पुस्तक में आश्रम के निर्माण तथा उसकी स्थापना का हार्द के साथ पू. श्रीमोटा की चेतनाशक्ति की सूक्ष्म प्रक्रिया द्वारा साधक का आध्यात्मिक विकास कैसे होता है, उस विषय को लेखक डॉ. रमेशभाई भट्ट (Ph.D.) ने बहुत सरल भाषा में समजाया है। इस की महिमा शब्दों से नहि कही जा सकती। उसके लिए मौनकक्ष में निवास का स्वानुभव जरुरी है।

इस पुस्तक का मुद्रण-कार्य चतुरंगी मुखपृष्ठ सहित श्री श्रेयसभाई पंड्या, मे. साहित्य मुद्रणालय, अहमदाबाद ने श्रीमोटा के प्रति अपने अत्यंत प्रेमभक्तिभाव से किया है। वे हमारे निकटवर्ती स्वजन हैं, उनका आभार मानने के लिए हमारे पास शब्द नहि है।

इस पुस्तक का मुद्रण, अनुवाद आदि कार्य बन सके उतनी सावधानी से किये गये हैं। फिर भी कोई क्षति मालूम पड़े तो कृपया हमें सूचित करें, जिससे आगे के संस्करण में सुधार हो सके।

इस पुस्तक के पठन से मार्गदर्शन पाकर जिज्ञासु साधकजन प्रभुप्राप्ति के पथ पर आगे बढ़े ऐसी प्रभुप्रार्थना है।

— टूस्टी मंडल

दि. : २५-७-२०१०
संवत् २०६६, गुरुपूर्णिमा

हरिःॐ आश्रम, सुरत

• अनुक्रम •

१.	प्रस्तावना	६
----	------------------	---

• खण्ड : १ •

हरिःॐ आश्रम

‘श्रीभगवान की अनुभूति हेतु पावन स्थल’

१.	‘प्राणवान’ आश्रम	८
२.	चेतनाशक्ति का कार्य	१६
३.	अंधेरे का उजाला	२६
४.	एक अनोखा—अनुपम स्थल	३३

• खण्ड : २ •

श्रीमोटा प्रेरित

‘लोककल्याण के कार्य’

१.	प्रभु प्रेरित कार्य	४३
२.	समाज अर्थात् भगवान	४७
३.	श्रीमोटा का महायज्ञ (भूमिका)	५३
४.	महायज्ञ की धर्म—ज्वाला	५७
५.	महायज्ञ के पुरोहित का संकल्प घोष	६३
	पूर्ति	७७

हरिःॐ आश्रम

● प्रस्तावना ●

पूज्य श्रीमोटा जिसके अधिष्ठाता हैं, वही स्थल 'हरिःॐ आश्रम' के नाम से पहचाना जाता है। इस पुस्तक में उसके निर्माण तथा वहाँ हो रही प्रवृत्तियों के पीछे रही आध्यात्मिक भूमिका का परिचय देने का प्रयास किया गया है। मैंने हमारे देश के प्रसिद्ध आश्रमों की मुलाकात ली है और वहाँ कुछ दिन रहा भी हूँ। इसके अलावा गुजरात के कुछ स्थानों पर भी रहा हूँ। परन्तु हरिःॐ आश्रम के मौन एकांत कक्षों में रहकर जिस जागृति और दृष्टि परिवर्तन का अनुभव किया है, वैसा कहीं भी नहीं हुआ। आज तो हरिःॐ आश्रम हमारे देश में आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक उत्थान का केन्द्र बन चुका है। हरिःॐ आश्रम द्वारा हो रहे सांस्कृतिक और सामाजिक उत्थान के कार्यों का मूल्यांकन इस पुस्तक में नहीं हुआ है।

'हरिःॐ आश्रम' के विषय में मैंने १९६८ में एक लेख लिखा था। उसे पढ़कर पूज्य श्रीमोटा ने जो लिखा था उसे उन्हीं के हस्ताक्षरों में इस पुस्तक के आवरण पृष्ठ चार पर प्रकाशित किया है।

श्रीमोटा ने अपने देहत्याग करने से पूर्व आश्रम से विदा लेने से पहले आश्रम के हर कोने को, इस भूमि के कण-कण को, खिले हुए फूलों, पौधों तथा वृक्षों को एवं समग्र वातावरण को दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया। पूज्य श्रीमोटा की यह चेष्टा ही इस स्थल की महिमा का समर्थन करती है।

इस पुस्तक के अधिकतर प्रकरण 'हरिवाणी' में प्रकाशित हुए हैं। पूज्य श्रीमोटा के विषय में लिखने की समयानुकूलता बढ़ा देने के लिए पूज्य श्रीमोटा के प्रिय स्वजनों, मेरे सहमित्र श्री प्रभुदास जानी और जयन्तीभाई जानी का कृतज्ञतापूर्वक स्मरण हो रहा है। हरिवाणी



ट्रस्ट विषयक संपूर्ण प्रबंध का दायित्व श्री प्रभुदासभाई ने संभाल लिया तथा श्री जयन्तीभाई ने पूज्य श्रीमोटा की पुस्तकों तथा 'हरिभाव' की मुद्रण शुद्धि का कार्य संभाल लिया । यदि वे इस कार्य में सहभागी न हुए होते तो मुझ से इतना अधिक लिखा गया न होता । जानी बंधुओं का यह सहकार्य तो उनके हृदय में रही पूज्य श्रीमोटा के प्रति रही भक्ति है किन्तु मुझसे यदि इस कार्य को समादार दिया जाय तो मेरा भाव समुचित न गिना जायगा । इससे श्री प्रभुदासभाई और श्री जयन्तीभाई के प्रति कृतज्ञता का भाव ज्ञापित करता हूँ । हरिःॐ आश्रम, नडियाद के ट्रस्टी मंडल ने इस पुस्तक को प्रकाशित किया अतः सभी ट्रस्टियों का आभारी हूँ ।

पूज्य श्रीमोटा तथा हरिःॐ आश्रम के प्रति सद्भाव रखनेवाले सभी इस पुस्तक का स्वागत करेंगे, ऐसी श्रद्धा है ।

— रमेश भट्ट

'संतस्मृति' १, एस.बी.आई, ऑफिसर्स सोसायटी,
नारायणनगर, पालडी, अहमदाबाद-३८० ००७.
फोन नं. २६६११३४३, २६६१४८२९
४, सितम्बर, १९९६

खण्ड : १

‘हरिःॐ आश्रम : श्रीभगवान की अनुभूति हेतु पावन स्थल’

१. ‘प्राणवान’ आश्रम

श्रीमोटा के पूज्य बालयोगी महाराज ने १९२३ में नड़ियाद में दीक्षा दी। उसके पश्चात् शेढी नदी के दक्षिणी घाट के किनारे विशाल वटवृक्ष पर बैठाकर साधन पद्धति सिखायी। पूज्य श्रीबालयोगीजी ने वहाँ से विदा लेने से पहले श्रीमोटा को कहा था कि, ‘इस स्थल पर तुम्हारा आश्रम बनेगा।’ श्रीमोटाने उस समय तो ऐसा माना कि स्वयं को अच्छा लगाने के लिए वे ऐसा कह रहे होंगे। परन्तु १९५५ में इस स्थान पर जाते हुए श्रीमोटा को गुरु महाराज के कहे वचन स्मरण हुए। इस बात को स्मरण करते हुए श्रीमोटा ने १९७४ में सम्पन्न हुए सत्संग में यों कहा, ‘ऐसे लोगों की कहीं बात फलित हुए बिना नहीं रहती।’ (जन्म-पुनर्जन्म, प्र. आ. पृ. ४६)

शेढी नदी के किनारे स्थित इस स्थान का नाम ‘हरिःॐ आश्रम’ रखा गया। १९२३ में श्री गुरुमहाराज ने की भविष्यवाणी १९५५ में फलीभूत हुई। परन्तु १९४६ में आश्रम की भावना तथा आश्रम के साकार रूप लेने से होनेवाले कार्य के दर्शन श्रीमोटा को हुए। १९३९ में परमात्मा के अनुभव दर्शन के बाद श्रीमोटा लगातार घूमते रहे। जहाँ-जहाँ निमित्त बनता वहाँ-वहाँ जाते। उसके पश्चात् किसी एक स्थान पर लम्बे समय तक नहीं रहे। यो देखें तो १९३९ से १९७६ की २२ जुलाई तक लम्बे समय तक किसी एक स्थान में रहे हों, ऐसा नहीं हुआ। कभी एक ही स्थल पर महीने-दो महीने रहना हुआ हो, उसे अपवाद गिनना चाहिए। सुरत के जहाँगीरपुरा विस्तार



कि स्मशान भूमि कुरुक्षेत्र के पास की जमीन 'हरिःॐ आश्रम' के लिए ली गयी। उसके पश्चात् उस जमीन की देखभाल का दायित्व सौंपने के लिए स्टेम्प पेपर पर श्रीमोटा ने करार किया। उसमें स्वयं का निवास स्थान बतलाते हुए 'फिरते राम' लिखा है। कानूनी करार में ऐसे शब्द कानूनी तौर पर गलत माने जाते हैं। परन्तु श्रीमोटा का यह कानून स्वयं में से ही प्रगट हुआ था।

ऐसे फिरते राम श्रीमोटा के साथ रहना चाहते और रहने को आतुर श्री हेमन्तकुमार नीलकंठ को बार-बार ऐसा हुआ कि श्रीमोटा एक आश्रम करें तो वहाँ अकेले निश्चिन्त रह सकें। इसलिए उनकी ऐसी माँग हुआ करती थी। यह सच्चाई श्री नंदुभाई ने 'मोटा की महत्ता' पुस्तक में लिखी हुई है। श्रीमोटा ने आश्रम की स्थापना की माँग के उत्तर में २८-१२-१९४६ के दिन पत्र में ('जीवन प्रवेश' पृ. २२५ से २२७) में लिखा है—

'ऐसा मेरा आश्रम कैसा ? आप सभी चाहें तो प्राणवान आश्रम बन सकते हो।' इस विधान से ऐसा समझा जा सकता है कि प्राणवान आश्रम अर्थात् श्रीमोटा के स्वजन। श्रीमोटा को तो आश्रम की आवश्यकता ही नहीं। यह बात तो श्रीमोटा ने पहले ही वाक्य में प्रश्न द्वारा स्पष्ट की है। उन्होंने आश्रम के निर्माण का आलेख दिया है। 'प्राणवान आश्रम' के निर्माण की डिजाइन विषयक विवरण सूक्ष्मता से समझने जैसे हैं। श्रीमोटा बतलाते हैं कि 'यदि कोई जीव हृदय का भी हृदय बन जाय तो किस कारण किसी से चिपका है, उसे उसका सच्चा ज्ञान हो तो फिर वह अपनी मानसिक भूमिका अवश्य ऊँची ला सकता है।'

तात्पर्य यह है कि हम सभी की मानसिक भूमिका उपर उठे उतने अनुपात में 'प्राणवान आश्रम' की मिनारें ऊँची लगेँ। सामान्य



रूप से हमारे सभी के कामों के पीछे हमारे मन के विचारों और वृत्ति की दिशा मर्यादित और निम्नगामी होती है। इससे हमारे द्वारा होनेवाले काम पूर्ण हुए भासित होते हैं, परन्तु उस काम द्वारा जो 'आंतरिक कर्म' सिद्ध होना चाहिए वह बाकी रहता है। परिणामस्वरूप नींव ही कच्ची रहती है। इसीलिए श्रीमोटा ने उच्चविचार भाववाली मानसिक भूमिका बनाने का सूचन किया है।

मानसिक भूमिका उपर लाने के लिए श्रीमोटा ने हमें मार्गदर्शन भी दिया है। हमें आपश्री के 'हृदय में हृदय से' बनने का पुरुषार्थ करना चाहिए। आपश्री के 'हृदय में' अर्थात् आपश्री का हृदय पूर्ण पुरुषोत्तमरूप बना है, ऐसे तत्त्वभाव का हमें बनना है। यानी कि हम प्रभु के ही हैं, आंतरिक अवस्था प्रभु रूप है, ऐसा स्वीकार करना है, परन्तु इस यथार्थ को मात्र मन और बुद्धि से स्वीकर कर बैठे नहीं रहना है, किन्तु उस अनुभव के लिए मंथन होने देना है। इसलिए 'हृदय से' यह मंथन हो, यह आवश्यक है। इस तरह हमें 'हृदय से' आपश्री के 'हृदय में' बने रहें तभी हमें 'सच्चा ज्ञान' हो कि हम जिस पर लिप्त हैं उसका उद्देश्य क्या है? इस तरह श्रीमोटा के हृदय रूप परमात्मा के साथ हम 'हृदय से' जुड़ जाँय। ऐसा करने से हमारी भूमिका ऊँची आते जाएगी। केवल श्रीमोटा के साथ दिल से लिप्त रहने से और क्यों लिप्त हैं इसका ज्ञान रखें तो मानसिक भूमिका ऊपर उठाने की हमें यह गुरु चाबी दी है। इस प्रकार हमारे मंथन और पुरुषार्थ से हम में से हमारे प्राकृतिक व्यवहार तथा रागद्वेषादि भी जैसे-जैसे कम होते जाते हैं, वैसे-वैसे हम में सात्त्विक भूमिका खिलने लगती है। फलस्वरूप हम में आकाशभूमिका का निर्माण होता जाता है। इसलिए श्रीमोटा लिखते हैं, 'यदि वह (स्वजन) सचमुच का आकाश भूमिका का बन जाय तो उसके द्वारा प्रकाश



फैलाने का प्रभु निर्मित कार्य कितना सारा हो सकता है। कितनी अधिक होने की संभवानाएँ रही हैं और भरी पडी है। श्रीप्रभुकृपा से जो स्वजन ऐसी भूमिकावाले बनते हैं, वही मेरे मन से तो सच्चा आश्रम है।’

श्रीमोटा—‘पूर्णपुरुष’ के रूप में अवतरित हुए। उनका प्रागट्य ज्ञान—प्रकाश फैलाने का प्रभु निर्मित कार्य के लिए है। यह कार्य हम सभी के द्वारा होनेवाला है। इससे आपश्री ने हमें इस प्रकार की पात्रता प्राप्त करने को सूचित किया है। हम सभी प्रभु कार्य के निमित्त होने से, हम सभी की जिम्मेदारी बहुत बड़ी है। श्रीमोटा का जो स्वजन इस भूमिकावाला बनता है, वही श्रीमोटा का सच्चा आश्रम है।

इससे हम सभी को ऊपर बतलाये अनुसार डिजाइन के अनुरूप हम में से सही ‘हरिःॐ आश्रम’ का निर्माण करना है।

हम से हम ऐसे ‘सच्चे आश्रम’ का निर्माण हो इसके लिए श्रीमोटा ने दिन—प्रतिदिन हमें क्या करना है और किस तरह करना है, इसे समझाया है। आपश्री लिखते हैं कि, ‘सभी के पास ऐसी शक्ति है।’ ऐसा कहकर हमारी शक्ति को आपश्री ने प्रमाणित किया है और हमारे आत्मविश्वास की नींव को दृढ़ किया है। आत्मश्रद्धा और आत्मविश्वास की नींव पर ही ‘जीवन’ की इमारत खड़ी रह सकती है। उपरोक्त सूचनानुसार अपनी मानसिक भूमिका ऊपर उठाकर, आकाश भूमिका का निर्माण कर हमें संसार में किस तरह व्यवहार करना है, उसे समझाते हुए श्रीमोटा लिखते हैं, ‘इससे अपने पास जो कुछ भी आया करे, जिस—जिससे सम्बन्ध हो उन्हें उच्च मानसिकता में लाने के लिए नम्रता धारण कर—करके करें। उन्हें धर्म भावना में रुचि लेनी है और संसारी रागद्वेष और जलन के कारण होनेवाले झगड़ों को टालना है। श्रीभगवान के नामस्मरण से उसकी भक्ति में मन को



पिरोते जाना है। जो कुछ भी हुआ करे वह उस प्यारे के लिए ही और उसे ही जो-जो कुछ होता हो वह प्रेमभक्तिज्ञानभाव से समर्पण हुआ करे तो उसके जैसा दूसरा उत्तम आश्रम कोई हो ही नहीं सकता है।'

श्रीमोटा ने एक ही वाक्य में हमें उत्तम आश्रम के निर्माण की कार्यपद्धति बतलायी है। इसमें से एक भी कार्य कम ज्यादा नहीं कर सकते। सभी एक साथ आचरण करना होता है, नहीं तो अधिकचरा रहने से सभी छूट जाएगा।

उत्तम आश्रम के लिए श्रीमोटा का यह दर्शन है।

तब भी, यदि आश्रम बनाना ही हो तो भी उस आश्रम द्वारा क्या निर्माण होगा, यह आपश्री ने इसी पत्र में सूचित किया है। आश्रम के लिए आपश्री को पैसे तो मिल ही जाएँगे, 'किन्तु मुझे परम्परागत आश्रम नहीं चाहिए।' इस तरह आपश्रीने निर्दिष्ट किया है। श्रीमोटा के जीवन के समग्र कार्यप्रदेश का अवलोकन किया जाय तो आपश्री के प्रत्येक कार्य में मौलिकता ही है। आपश्री की साधना पद्धति का अध्ययन करनेवालों का भी यही प्रतीति होगी। जब कोई भी कार्य उद्देश्यहीन होता है तब वह कार्य प्रथायुक्त होता है। इससे कर्म स्वयं ही बोझ बन जाता है। हमारे जनसमाज में तथा साधु समाज में भी आश्रमों के विषय में निश्चित कल्पना है। जहाँ रहने खाने की व्यवस्था हो और अमुक प्रकार के सामूहिक साधन प्रतिदिन निश्चित समय पर हुआ करें, वही आश्रम। फिर जहाँ मुफ्त रहने खाने को मिलता हो वह सबसे अच्छा आश्रम; ऐसी मान्यता भी समाज में है। हमारे देश में ऐसी लीकवाले बहुत से आश्रम हैं। श्रीमोटा को कैसा आश्रम बनाना है? इस विषय में उनके दर्शन में हमें आपश्री के परम अनुभव और उनके सामर्थ्य प्रयोग की सफलता इंगित होती है। आपश्री लिखते हैं, 'जहाँ से भगवान की चेतनाशक्ति, भावना जैसे बिजली के मूल कारखाने



से चारों ओर बिजली प्रसारित होती है, वैसे ही अपने आप प्रसार होने लगता है, और ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव में आने लगता है और ऐसी अंतर में सहज भावना प्रगट हो तब ऐसा करना योग्य है। उसकी प्रेरणा अभी तक वैसी नहीं मिल सकी है। जितने प्रभुप्रसादी के रूप में मिले हैं, उनका जीवन भगवदीय होता अनुभव कर सकते हैं, तभी आश्रम तो उसकी कृपा से सुशोभित होगा। ('जीवनप्रवेश' आ. १, पृ. २२५-२६-२७)

श्रीमोटा के दर्शन में आश्रम एक अलौकिक स्थल है। इस अलौकिकता को समझाने के लिए आपश्रीने एक दृष्टान्त दिया है। हम आज जहाँ-जहाँ बिजली का प्रकाश देखते हैं वहाँ-वहाँ उसका मूल मात्र स्विच, वायर्स या मीटर में नहीं है, परन्तु उसका सही मूल तो बिजली जहाँ से उत्पन्न होती है, ऐसे मुख्य स्टेशन में है। वहाँ से बिजली का प्रवाह बहता है और हम सभी को वह बिजली हमारे घर तक मिलती है। उस बिजली का उपयोग हम अनेक साधनों के द्वारा करते हैं और सुख-सुविधा प्राप्त करते हैं। सूक्ष्म बात समझाने के लिए श्रीमोटा ने ऐसा एक दृष्टान्त दिया। हम ऊपरी तौर पर देखें तो भी बिजली की गति और शक्ति से भी श्रीभगवान की चेतनाशक्ति की गतिशक्ति तो अपार है। इसलिए श्रीमोटा कहते हैं कि आश्रम यह श्रीभगवान की चेतनाशक्ति और भावना का मूल केन्द्र बना रहेगा। यों तो विद्युतशक्ति सभी जगह है। ऐसा होने पर भी हम अपनी इच्छानुसार कहीं से भी बिजली का प्रकाश प्राप्त नहीं कर सकते हैं। इस तरह चेतन-भगवान सर्वत्र है पर हम उसे अनुभव नहीं कर सकते हैं। इसलिए श्रीमोटा कहते हैं कि आश्रम तो ऐसा होना चाहिए कि जहाँ से 'श्रीभगवान की चेतना शक्ति का अपने आप प्रसारण हो और उसका प्रत्यक्ष अनुभव हुआ करे।'



श्रीभगवान की चेतनाशक्ति अर्थात् क्या ? 'भगवान' या 'चेतन' सर्वत्र और सभी में होने पर भी 'स्वयं' साक्षीरूप है। फिर भी शक्ति रूप में जो व्यक्त है, वह श्रीभगवान की चेतनाशक्ति के रूप में पहचाना जाता है। उस शक्ति का कार्य हमारे में विराजमान श्रीभगवान के आवरण रूप बनकर कार्यरत रहते राग द्वेषादि काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, आशा, इच्छा, तृष्णा, लोलुपता को कमजोर करना है। श्रीभगवान की ऐसी चेतनाशक्ति के साथ भगवान की भावना 'अपने आप प्रसारित हो' यह भी आवश्यक है। भगवान की भावना यानी हम सभी मन, बुद्धि और हृदय से सर्वत्र एवं सभी में भगवान उपस्थित है ऐसा दृढ़ रूप से माने, जानें और अनुभव में लाने के लिए मथन करे। भगवान की भावना यानी हमारा व्यक्ति के रूप में अहंकार भगवान को शरणागत बना रहे। ऐसी भगवान की चेतनाशक्ति और भावना ऐसे आश्रम में से 'अपनेआप' प्रसारित हो। तात्पर्य यह कि प्रयत्न बिना सहजरूप से वह प्रसरित हो। 'सहज रूप से', 'अपने-आप' प्रसारित हो इसका मर्म यह है कि स्वयं परमात्मा का ही इस केन्द्र पर उपस्थिति का 'होना पन' बना रहे। जहाँ परमात्मा है वहाँ 'प्रयत्न' नहीं है। 'अपनेआप' होता है। यही हैं परमात्मा की उपस्थिति के दर्शन। इसलिए श्रीमोटा ने 'प्रसरने'के अलावा 'प्रत्यक्ष अनुभव में आया करे' ऐसा बतलाया है। यहाँ भी 'प्रत्यक्ष' यानी नजर या आँख के सामने नहीं, परन्तु दिल की दृष्टि से अनुभव से प्रमाणित हो सके। ऐसा हो सके 'ऐसी अंतर में सहज भावना प्रगट हो तब वैसा करना योग्य है। उसकी प्रेरणा अभी तक मिल नहीं सकी है।' ऐसा आपश्री ने १९४६ में लिखा है।

श्रीमोटा को १९४६ तक 'आश्रम बनाने' की सहज भावना अंतर में प्रगट नहीं हो पाई थी तथा ऐसी प्रेरणा प्राप्त नहीं हो पाई ऐसा स्पष्ट



रूप से बतलाते हैं। ऐसी सहज भावना और प्रेरणा १९५० में हुई तब श्रीमोटा ने 'आश्रम बनाने' की संमति दी। 'श्रीभगवान की चेतनाशक्ति और भावना' के मूल केन्द्र की प्रतिष्ठा होते अन्य नौ वर्ष बीते। यह आश्रम भगवान की कृपा से कब सुशोभित हो ? भावनात्मक आश्रम के शिखर कब जगमग प्रकाशित हो उठे ? इस विषय में समझाते श्रीमोटा के मार्मिक वचनों को पुनः पढ़ें : 'जितने प्रभु प्रसादी के रूप में प्राप्त हैं उनका जीवन भगवदीय होता अनुभव कर सकते हैं, जब हमारा समग्र जीवन भगवान के लिए ही प्रवाहमान हो, तभी प्रभु की कृपा से आश्रम शोभित होगा।'

हम भगवान के लिए जीयें यानी कि भगवान का ही काम करें तब हमारा जीवन भगवदीय हुआ गिना जाएगा। भगवान के लिए जीना अर्थात विशेष रूप से भगवान के 'होने का भाव' ध्यान में रखकर आचरण करें और हमारे कर्म के साथ हमारे रागद्वेषादि निर्मूल होते रहें ऐसा भाव जाग्रत रहे यह भगवान का कार्य हुआ गिना जाएगा।

ऐसे हमारे प्रयत्नों से जागृत रहने की भावना से श्रीमोटा का आश्रम सुशोभित हो उठेगा।



२. चेतनाशक्ति का कार्य

प्रभुमय जीवन के लिए या जीवन विकास हेतु साधना एकांतिक और एकांगी है। यानी कि गुप्त रहते हुए अकेले ही यह साधना करनी है। श्रीमोटा ने तो स्वयं का शरीर त्यागा वहाँ तक अपने गूढ़तम जीवन को गुप्त ही रहने दिया था। संसार में रहकर, प्राप्त व्यवहारों को निभाकर और प्राप्त कर्म पूरी निष्ठा से भक्तिपूर्वक आचरण आचरित करते हुए साधना की है। फिर भी उनके निकट के साथियों को भी इसका पता नहीं चला था।

१९३९ में चेतन या प्रभु की तरह 'स्वयं' के 'सर्वत्र विद्यमान' के अनुभव के पश्चात् उनके हृदय में के प्रगट प्रभु 'प्रेमरूप जीवनचेतना' मय प्रगट रूप में जागृत प्रतीत होते थे और समीप होनेवालों को भी इसके अद्भुत और अलौकिक अनुभव होने लगा था। साधना के दौरान जो उनकी मजाक मस्ती करते और कभी उन पर कटाक्ष करते थे उन्हें भी श्रीमोटा के प्रति आकर्षण हुआ था। स्वयं के अनुभव में जागृत प्रेमस्वरूप जीवनचेतना का स्पष्ट भास आपश्री ने (जीवन-संशोधन, पृ. १६) १९३९ के एक पत्र में दिया है।

'दीखता मुशलाधार मेघ सम, बरसता प्रेम जीवन में

डूबता है उसमें जो, तैरकर होता धन्य वह।'

स्वयं के जीवन में 'मुशलाधार मेघ' के समान प्रेम बरसता दिखाई होता है। उसमें डूकर जो स्वयं तैर चुके हैं। अर्थात् पूर्णरूप का अनुभव अखण्ड करके, स्वयं अपने 'अनुभव' से, उसमें तैरते रहे हैं। इससे वह धन्य हुए हैं।

सचमुच में तो श्रीमोटा के ऐसे अनुभव से हम सभी धन्य हुए हैं। उनके अनुभव के 'प्रेम' को व्याख्या में नहीं बाँध सकते हैं। हम



संसारी जन 'प्रेम' शब्द को उत्पन्न क्षुल्लक रूप में समझते हैं। परन्तु प्रेमरूप में व्यक्त होते प्रभुभाव की विशेषता कला अधिक गहरायी से जानने-समझने के लिए श्रीमोटा रचित 'पुनीत प्रेमगाथा' तथा 'प्रेम' पुस्तकों को स्वाध्याय करना चाहिए।

आपश्रीने जीवन द्वारा सतत बरसते प्रेमभाव का स्वयं अनुभव किये गये 'प्रभु पद' का प्रताप है। अतएव लिखा है,

'यह है प्रताप पद की रजधूलिका का,

उंका बजाकर कहूँ जगत को ध्यान लेना ।'

१९३९ में जागृत हुई प्रेमचेतना का अनुभव अन्य जिज्ञासु व्यक्तियों को भी हो ऐसे आध्यात्मिक विज्ञान के प्रयोग के लिए १९५० में आपश्रीने आश्रम स्थापित किये। प्रारंभ में कुंभकोणम् (दक्षिण भारत), नडियाद और सुरत में आश्रम बनाये। उसके बाद अहमदाबाद नरोड़ा में स्थानिक भक्तों ने आश्रम शुरू किया। बाद में कुंभकोणम् और नरोड़ा (अहमदाबाद) के आश्रम बंद हुए, उसके साथ ही नडियाद आश्रम में मौन एकांत के दो अधिक कमरे बनवाये। अभी नडियाद और सुरत में आश्रम हैं।

श्रीमोटा के ये 'हरिःॐ आश्रम' एकदम अनोखे हैं। श्रीमोटा को जो सहज रूप से 'अपने आप' प्राप्त हुआ था उसका ही उपयोग किया। आश्रम के लिए जगह में आवश्यक और उपयोगी निर्माण कार्य ही करवाया। उसके बाह्यरूप को जरा भी महत्त्व न दिया। किन्तु प्रकृति की रचना में से सौन्दर्य का निर्माण किया। स्थान के एकांत को रमणीय बनाकर भगवान के रम्यरूप को प्रगटित किया। सत्य (भगवान का चेतनत्व) तथा शिव यानी एकांत में आत्मकल्याण के लिए साधना कार्य तो अंतर्गत रूप में स्थापित थे ही। इसतरह 'हरिःॐ आश्रम' सत्यम् शिवम् सुन्दरम् वाली प्रभु की त्रिमूर्ति के रूप में व्यक्त हुआ है।



श्रीमोटा ने १९५० में आश्रम की स्थापना के पश्चात उसका विज्ञापन या प्रचार कभी नहीं किया, क्योंकि प्रभुशक्ति के प्रागट्य का प्रचार स्वयं सत्य से विरुद्ध होता है। सुरत आश्रम की स्थापना के पूर्व श्रीमोटा सुरत जाते थे। उस समय कुछ ही लोग श्रीमोटा को मिलते थे। उनमें एक तो श्री भीखुभाई पटेल थे। उन्होंने एक दिन श्रीमोटा को कहा, 'आप जब यहाँ आओ उस दिन अखबार में विज्ञापन हो तो लोगों को जानकारी होने से आपको अधिक लोग मिल सकते हैं।' श्री भीखुभाई में ऐसी तीव्र भावना रहा करती थी कि श्रीमोटा जैसी विभूति का बहुजन समाज को परिचय हो और उनका लाभ अधिक लोगों को मिले। तब श्रीमोटा ने भीखुभाई को प्रेम से उत्तर देते हुआ पूछा, 'भीखुकाका, सूर्य उगता है तो अपने उगने का विज्ञापन देता है?' श्रीमोटा का यह मार्मिक प्रश्न स्वयं में प्रगट हो रहे कोटि सूर्यो के प्रकाश का संकेत करता है।

इस प्रकार श्रीमोटा ने जैसे अपने अनुभव के विषय में वैसे अपने आश्रमों के विषय में कभी विज्ञापन नहीं दिया। ऐसा करने के पीछे का तात्पर्य यह है कि जो-जो निमित्त हैं, वे प्रभुकृपा से 'अपने आप' ही खिंचकर आनेवाले हैं, प्रत्येक व्यक्ति के लिए समय पकनेवाला है। ऐसा अपार धैर्य रखने की असाधारण शक्ति है। परन्तु श्रीमोटा का अनुभव 'कालातीत' था। इससे ही आपश्री के देहत्याग के बाद भी आपश्री में 'जागी प्रेमरूप चेतना' के स्पर्श से अधिक जीव इस आश्रमों के प्रति आकर्षित हुए हैं।

ऐसे आकर्षण के पीछे रही अलौकिकता के अनके दृष्टान्त दिये जा सकते हैं। श्रीमोटा की सदेह उपस्थिति के दौरान कैनेडा के युवक रोबिन के एक वर्ष से कुछ दिन अधिक लगातार मौन-एकान्त का सेवन किया था। आपश्री के देह त्याग के बाद स्विटजरलेन्ड की एक



युवती प्रयोगार्थ मौनमंदिर में एक सप्ताह तक बैठी। हिमालय की गुफाओं में बैठकर वर्षों से साधना करनेवाले साधु आकर्षित होकर एक महिने से लेकर दो वर्ष तक मौन एकान्त सेवनकर गए हैं।

आज (१९९६) श्रीमोटा के देहत्याग के बीस वर्ष बीतने पर भी मौन एकान्त की साधना के लिए जिज्ञासुओं को कुछ देर तक राह देखनी पड़ती है। जबकि दूसरी ओर एक श्रेष्ठ दृष्टान्त है कि नड़ियाद या सुरत में आश्रम के नजदीक रहनेवालों को यह भी पता नहीं कि इस स्थान पर क्या चल रहा है इसकी जानकारी नहीं है। इन दोनों आश्चर्यों के पीछे 'निमित्त' का विज्ञान है।

श्रीमोटा ने आश्रमों की स्थापना के समय स्वयं द्वारा होनेवाले सूक्ष्म कार्य की स्पष्टता की है। इसे जानने के बाद हरिःॐ आश्रम अर्थात् क्या ? यह हमें समझ में आ जाएगा। श्रीमोटा ने आश्रम विषयक ऐसा यथार्थ सर्वप्रथम १९५८ में प्रगट हुआ 'नर्मदापदे' के दूसरे संस्करण में प्रकाशित किया था। उस समय श्रीमोटा अपना नाम कभी भी प्रकाशित नहीं करते थे। इससे आपश्री समाज में संपूर्ण अज्ञात थे। श्रीमोटा ने इस पुस्तक के ९ से १९ पृष्ठों में 'लेखक के आश्रम' शीर्षक में जो कुछ भी व्यक्त किया है इसे समझने से हरिःॐ आश्रम की स्थापना और वहाँ होनेवाले कार्यों की गूढ़ता की झाँखी प्राप्त की जा सकती है।



श्रीमोटा प्रारंभ में लिखते हैं, 'स्वयं में जागृत हुई प्रेमस्वरूप जीवनचेतना द्वारा अन्य जीवों में भी ऐसी ही प्रेमचेतना को दीप्त करने की लेखक की अभिलाषा को मूर्त स्वरूप देने के लिए उन्होंने नड़ियाद, सुरत और दक्षिण हिन्द में कुंभकोणम् में हरिःॐ आश्रम स्थापित किये हैं। वहाँ आत्मकल्याण की साधना की शुरुआत करने के लिए



अथवा उसमें प्रगति करने के लिए साधक को अनोखा अवसर प्राप्त होता है ।’

श्रीमोटा हरिःॐ आश्रम द्वारा जिस अभिलाषा को मूर्तस्वरूप देने की तीव्र इच्छा रखते थे उसकी उन्होंने स्पष्टता की है । ‘स्वयं में जागृत हुई प्रेमस्वरूप जीवनचेतना के’ सामर्थ्य को प्रयोगात्मक रूप से सिद्ध की जा सके इसकी प्रयोगशाला अर्थात् हरिःॐ आश्रम । हरिःॐ आश्रमों के मौन एकान्त हेतु तैयार किये गये कक्ष अर्थात् उसमें बैठनेवाले के जीवन में स्वयं की जागृत हुई प्रेमचेतना ‘जैसी ही प्रेमचेतना’ को दीप्त करने की प्र-योग शालाएँ । इन प्रयोगशालाओं के मौन एकान्त कक्षों को शोधन शाला रिफानइनरी के रूप में पहचाना जाता है । श्रीमोटा ने इन स्थानों पर होनेवाले कार्यों को ‘अग्निस्नान’ बताया है । ये मौन एकान्त कक्ष ही हरिःॐ आश्रम हैं । इनमें जो ‘आत्मकल्याण की साधना की शुरुआत’ करना चाहते हैं अथवा ‘साधना में प्रगति हो’ उत्कटता रखते हों उन्हें इन आश्रमों में ‘अनोखा अवसर’ प्राप्त होता है । हरिःॐ आश्रम के रूप में मौन एकान्त कक्ष इस अर्थ में हरिःॐ आश्रम का हृदय हैं ।

इन मौन एकान्त कमरों में बैठे श्रेयार्थियों को श्रीमोटा की ‘विलक्षण कार्यशैली’ द्वारा गूढ़ रूप से मार्गदर्शन प्राप्त होता है । हरिःॐ आश्रमों के मौन एकान्त कक्षों की यही ‘अनोखी’ विशिष्टता और विशेषता है । श्रीमोटा ने आश्रम की स्थापना के आरंभ काल में मौन एकान्त का समय इक्कीस दिन रखा था । उसके पश्चात् कम से कम एक सप्ताह रखा गया । कक्ष में बैठनेवाले साधक को दिनभर की सभी आवश्यकताएँ अंदर ही पूर्ण रूप से सुलभ करवाई जाती हैं । आश्रम के प्रारंभ से ही सभी कक्ष बिजली, पानी, स्नानगृह, पाखाना से सुसज्ज हैं । गदेल, तकिया, चारपायी, टेबल, कुर्सी, टेबल-लेम्प, चौकी, स्टूल्स आदि



साधनों से सम्पन्न हैं। इन सुविधाओं का उद्देश्य है कि अंदर बैठनेवाला 'साधक उतने समय अन्य के साथ मौन का सेवन करे। सुबह के चार बजे उठकर रात के आठ बजे तक उसे बस यही काम करना होता है। उसके 'इष्ट के नाम का जोर से रटन'। श्रीमोटा कहते हैं, 'उसमें कुछ समय का ही अपवाद भले ही रखे। दोपहर भोजन के बाद जब उस पर तन्द्रा या निद्रा आक्रमण हो, तब उसके निवारण के लिए साधक कमरे में टहलते टहलते भजन गाये या स्वयं को हुए आध्यात्मिक अनुभवों को लिखे या किसी आध्यात्मिक साहित्य को पढ़कर एक-दो घण्टे का समय व्यतीत कर लेता है। अपेक्षा यह रहेगी कि लिखते-पढ़ते हुए भी मुँह से नामस्मरण सतत चलता रहे और इस प्रकार अपेक्षानुसार कितनों का ही नामस्मरण लगातार चलता रहता है।'

इसी प्रकार मात्र अकेले जप की प्रवृत्ति में सतत लगे रहे और लगातार इक्कीस दिन तक अंधेरे कक्ष में नितान्त अकेले बंध रहकर वैया करना, यह कोई छोटी-बड़ी बात नहीं है। इस प्रकार श्रीमोटा ने जो कहा यह पूर्णतः उचित है। मौन एकान्त कमरे में बैठनेवालो को ऐसा अनुभव होता है, उसका एकमात्र कारण श्रीमोटा की चेतनाशक्ति है। यह चेतनाशक्ति साधक का रक्षण करती है। यानी कि साधक के मन, बुद्धि, चित्त, प्राण, अहम् आदि करण उसे योग्य प्रमाण में स्वीकारात्मक बनकर, चेतनाशक्ति द्वारा शुद्ध होते जाते हैं और उर्ध्वगति के लिए योग्य बनते हैं। मौनएकान्त की साधना के लिए बैठनेवाले स्वेच्छा से बैठते हैं। इसलिए श्रीमोटा कहते हैं, 'उसने स्वेच्छा से स्वीकार किए अग्निस्नान से वह क्षेमकुशल रहकर बाहर निकलता है।' इसमें 'अग्निस्नान' सूचक शब्द है। क्योंकि इस साधना द्वारा प्रगटते ज्ञानाग्नि में साधक तपता है और तेजस्वी होता है। साथ साथ इस ज्ञानाग्नि से वह पवित्र बनता है। ऐसी तेजस्विता और पवित्रता



किस तरह प्राप्त की जाती है, वह भी श्रीमोटा ने समझाया है। ऐसे अंधेरे एकान्त कमरे में इतने लम्बे समय तक श्रीमोटा की चेतनाशक्ति से ही टिक पाते हैं और अंतःकरण को बिलकुल नुकसान नहीं होता है। उल्टा वे करण अधिक क्षमता धारण करके शुद्ध बनते हैं। साधारण रूप से 'एकान्त में इतने समय बंद रहें तो मनुष्य पागल हो जाय। जेल में कठिन से कठिन सजा एकान्त कमरे की है। उसमें भी कुछ ही दिन रखते हैं।' यह निर्देश श्रीमोटा ने इसलिए किया है कि आश्रम के अंधेरे और एकान्त कमरों में श्रीमोटा की चेतनाशक्ति की 'बिलक्षण कार्यशैली' साधक सो आत्मकल्याण के प्रति गतिशील बनाती है।

श्रीमोटा ने 'अपनी' चेतनाशक्ति की 'विलक्षण कार्यशैली' समझाते हुए जो लिखा है, उसके द्वारा साधक के अंतःकरण का शोधन किस तरह होता है उसकी हमें प्रतीति मिलती है। श्रीमोटा लिखते हैं, 'ऐसी साधना में मनुष्य को अपना मूल्यांकन सही ढंग से करना आ जाता है। उसके अर्धजागृत और अजागृत मानस में गहराई में पड़े हुए आमने-सामने की दिशा के प्रवाहों की और उसकी प्रकृति एवं स्वभाव की जीवन में प्रथम बार कुछ स्पष्ट झाँकी उसे होती है। अभी तक सोकर पड़े हुए उसके सत्त्व में के आसुरी तत्त्वों ऊपर तैर आते हैं और उसके मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम् के अंतर के करणों में भारी उथलपुथल मचाते हैं। जैसे यमुना की धरा में सो रहे कालियानाग को श्रीबालकृष्ण ने जगाया था वैसे। किन्तु उसमें विशेष और खास ध्यान आकर्षित करनेवाला यथार्थ तो ऐसा है कि ऐसी अंतर में होनेवाली भारी हलचल के दौरान भी उसका ऊँचे स्वर में होता जप लगातार चलता रहता है। उसमें किसी भी प्रकार का भंग नहीं पड़ता। अंतर में चल रहे घमासान आंदोलन की रुकावट से या लगातार जोर जोर से सत्रह-अठारह घण्टे नित्य इक्कीस दिन तक बोलते



हुए भी शारीरिक श्रम से। उसकी आवाज, छाती, सिर संक्षेप में जोर से उच्चारण करने में जिन-जिन अंगों में घिसाव होता है, उन सभी में से किसी को भी ऐसा श्रम नहीं पड़ता कि जोर से होता जप रुक जाय। यह तो अपने आप चलता रहता है।

श्रीमोटा की चेतनाशक्ति से मौन एकान्त कक्ष में जो सूक्ष्म आंतरिक घटनाएँ बनती हैं, वे आत्मा के अनुभव की ओर प्रगति करानेवाली होती है।

(१) उस चेतनाशक्ति से पहला फल तो हमें अपना मूल्यांकन 'सही ढंग' से करना आता है। हम अपने व्यवहार के दौरान अपने आप का मूल्यांकन करते हैं। इसमें हमें अपने व्यवहारों को, अपने आचरण को, अपने विचारों को और अपनी वृत्तियों को उचित ही ठहराते हैं और हमारी प्रकृति तथा स्वभाव के वेग से होते कार्य सही ही हैं ऐसा मानते हैं। यह हमारा 'सही मूल्यांकन' नहीं है। जब इस मौनएकान्त की साधना के दौरान सूक्ष्म विवेकदृष्टि आती है, उससे हमारे स्वभाव के दोष स्पष्ट दिखायी देते हैं और भूतकाल में हुए हमारे आचरण का योग्य और पूर्णरूप से मूल्यांकन होने से ज्ञानयुक्त नम्रता की भावना हमारे अंदर जागती है।

(२) दूसरा फल अद्भुत है। हम अपने बाह्य जीवनव्यहर बाह्य जागृति से करते हैं। यह जागृति इस जागृत मन के कारण है। परन्तु हमारा अर्धजागृत और अजागृत मन, ऐसे एकान्त के कारण और मौन के फल से सक्रिय बनता है। परिणामस्वरूप हमने कभी भी कल्पना न की हो ऐसे शुभ-अशुभ, शान्त-भयंकर विचार तथा कल्पनाएँ उद्भवित होती हैं। इस से हमारी प्रकृति और हमारा स्वभाव कैसा है? इसकी हमें जीवन में पहली ही बार 'कुछ स्पष्ट झाँकी' होती है। अर्थात् हमारा प्राकृतिक और स्वाभाविक रूप कौन-सा है, वह हमसे



एकदम अलग पड़ा दीखता है। हम सभी का जीवन प्रकृति के वेग से चलता है। इससे हमारा जीवन बहिर्मुख ही रहा करता है। ऐसी बहिर्मुख जीवन पद्धति के कारण हमारी प्रकृति के सत्त्व में के आसुरी तत्त्व सक्रिय नहीं होते हैं। जब मौनएकान्त में हमारी बहिर्मुखी क्रियाशीलता बंद होती है। इसके परिणामस्वरूप आज तक 'सोकर पड़े रहे' वह आसुरी तत्त्व ऊपर तैरने लगते हैं और हमारे अंतःकरण में भारी उथलपुथल मचाते हैं। यह प्रक्रिया श्रीमोटा की चेतनाशक्ति से ही होती है। यों तो ऐसे आसुरी तत्त्व हमारी असावधान जीवनपद्धति के दौरान कभी भी जागृत होकर हमारे समग्र जीवन को नष्ट कर सकते हैं, ऐसे हैं। उसे कौन जगाता है? श्रीमोटा ने स्पष्ट बतलाया है, 'जैसे श्रीबालकृष्ण ने यमुना की धारा में सो रहे कालियानाग को जगाया था' उसी तरह ये आसुरी तत्त्व जागते हैं। श्रीमोटा ने १९३९ में स्वयं को हुए साक्षात्कार को 'श्रीकृष्ण की प्रेमचेतना' के अनुभव रूप में बतलाया है। वह 'प्रेमचेतना शक्ति' हमारी जीवन यमुना की गहर धरा में सो रहे ऐसे भीषण और संहारक तत्त्वों को जगाकर उसका निराकरण और निवारण करते हैं।

(३) हमारी संपूर्ण प्रकृति और स्वभाव के व्यवहार तथा अज्ञात में पड़े संस्कारों से होती प्रचण्ड उथलपुथल के साथ-साथ ही हमारे में रहा प्रभुरूप भी जागृत होता है। प्रकृति और प्रभु के बीच की सूक्ष्म भेदरेखा से हम में 'असलीस्वरूप'—'आत्मस्वरूप' की जागृति आती है। इससे ऐसे आसुरी तत्त्वों की उथलपुथल को 'हम' देख सकते हैं, सह सकते हैं और संग्राम कर सकते हैं। पूज्य श्रीमोटा में प्रगट हुए पूर्ण पुरुषोत्तम की समर्थ, अगोचर फिर भी लगातार अनुभव होती शक्ति से यह अत्यन्त अद्भुत रहस्यमय घटना अनुभव करते हैं। श्रीभगवान की प्रत्यक्ष उपस्थिति का प्रमाण हमें मिलता है। जो हमारे बहिर्मुख



जीवन में कभी संभव नहीं है। इतना नहीं, हम इच्छा करें या संकल्प करें तब भी जो होना असंभव है, ऐसा जोर से भगवान के नाम का रटन स्मरण होता जाता है। प्रतिदिन सत्रह से अठारह घण्टे तक इस ढंग से जप लगातार होता है। हमें में होती आंतरिक धाँधली भी जोर से अविरत होते जाते जप में विक्षेप नहीं ला पाती। इस ढंग के जप से गला, सिर या छाती में घिसाव होने पर भी उसका कुछ भी श्रम महसूस नहीं होता। इससे जप रुकता नहीं है। श्रीमोटा लिखते हैं वैसे जप 'अपने आप' चलता रहता है। 'अपने आप' शब्द में सूचित सहजता यही परमात्मशक्ति का प्रगट लक्षण है।

इस तरह श्रीमोटा में जागृत परमात्मशक्ति का प्रगट लक्षण है। इनके द्वारा ही मौनएकान्त में सहज साधना होती है। हम अपने में अंदर चलते हुए संघर्षों को देख सकते हैं और उसके सामने टिक सकते हैं। यह हमारे में जागे हुए प्रभु को आभारी है। इतनी अर्वाधि तक प्रत्येक व्यक्ति का यह आत्मसाक्षात्कार का अवसर गिना जाएगा।



३. अंधरे का उजाला

हरिःॐ आश्रम के मौन एकान्त कक्ष में होनेवाला जप, यह यज्ञकार्य है। वहाँ होनेवाला जप ही सच्चा जपयज्ञ है, क्योंकि उस जप द्वारा हमारे आधार में तटस्थता, साक्षीपन जागृत होते हैं और प्रकृति के स्वभाव के सुप्त संस्कारों के बल के सामने टिका रहा जा सकता है। फिर यह सब एकान्त में निर्माण होने से ये जागे संस्कार हमें धकेल कर कर्म में नहीं खींचते हैं, परिणामस्वरूप उसके संस्कार हमारे चित्त पर नहीं पड़ते हैं। इतने प्रमाण में हमारी चित्तशुद्धि होती है और उसके साथ ही साथ जो दूसरा महत्त्व का परिणाम निकलता है, उसका निर्देश श्रीमोटा ने किया है। 'ऐसे लम्बे काल का और इतनी एकाग्रता से हुआ जपयज्ञ साधक के सत्त्व-जीवकोष 'आधार' पर इतने गहरे संस्कार डालते हैं कि मानो कि शिलालेख; अर्थात् वे लम्बे समय के बाद भी नहीं मिटते हैं।' हरिःॐ आश्रम के इन कक्षों में अंधेरा तथा एकान्त होने से तथा श्रीमोटा की चेतनाशक्ति की सहायता के कारण गहन एकाग्रता लगती है। ऐसी एकाग्रता के कारण होते रहते जप हमारी तीन गुणवाली प्रकृति के सत्त्व-जीवकोष में—जो हमारे आध्यात्मिक जीवन का 'आधार' है सुदृढ़ संस्कार डालते हैं। जप यह चेतन की व्यक्त ध्वनि है। इतना ही नहीं यह श्रीमोटा की प्रखर साधना के कारण अनंतगुनी शक्तिशाली होने से हमारे आधार में चेतन के संस्कार डालती है। ये संस्कार शिलालेख जैसे मजबूत होते हैं, जिन्हें समय का बल भी मिटा नहीं पाता।

इसके अलावा जपयज्ञ को जो आध्यात्मिक परिणाम अनुभव होनेवाला है उसकी संभावना समझाते श्रीमोटा कहते हैं कि, 'जब उसका समय आता है, तब वे संस्कार उदय वर्तमान होकर, उसे



अनिवार्यरूप से आध्यात्मिक पंथ पर आगे ले जाते हैं, साथ ही उसकी गति में बहुत वेग देते हैं।' हमारे जीवन में कर्म के गतिप्रेरक बल के रूप में संस्कार काम करते हैं। हमारी अज्ञान दशा में रागद्वेष, बैर-डाह, माया-ममता-अहम् के जो संस्कार पड़े हैं, वे संस्कार जागृत होकर हमें हमारे प्रतिक्षण के कर्म में धकेलते हैं और हमारी जागृत दशा के अभाव में हम कर्म करते-करते भी उसी प्रकार के संस्कारों को लेकर अपने चित्त पर बोझ बढ़ाते हैं। फलस्वरूप द्वन्द्वात्मक स्थिति द्वारा पैदा होनेवाले संघर्ष के दुःख, क्लेश, व्याधि, चिंता आदि अनुभव करते हैं। इस जन्म में जीवदशा के संस्कार मौन एकान्त कक्षों में होनेवाले जपयज्ञ में आहुति के रूप में होम होते जाते हैं और उसी समय दौरान जप द्वारा और विशेष तो श्रीमोटा की चेतनाशक्ति द्वारा चेतन के जो संस्कार पड़ते हैं, उनका उदय होते ही हमारे में प्रभुमय जीवन जन्म लेनेवाला है, यह निश्चित है। इससे श्रीमोटा लिखते हैं, 'इस प्रकार प्रभुमय जीवन बनाने तथा विकसित करने के लिए यह साधन-शैली पद्धति की दृष्टि से तथा परिणाम की सफलता एवं तत्कालता की दृष्टि से मौलिक और अनोखी है।'

जप के जो संस्कार हैं, उनका उदय होने का समय कम करने से तत्काल परिणाम अनुभव कर सकते हैं। परन्तु उसके लिए मौनएकान्त के दौरान जो तमन्ना और चटपटेपन की भावना जागृत होती है, उसे संसार-व्यवहार में टिकाये रखने के लिए प्रचण्ड पुरुषार्थ करना पड़ता है। उसे हम चूक जाते हैं। पूर्वजन्म के संस्कारों के धक्के के सामने साधना की शक्ति को अविरत लगाये रखने की प्रवृत्ति से ही समय कम किया जा सकता है। ऐसा न हो तो भी मौनएकांत के दौरान पड़े शिलालेख के समान चेतना के संस्कारों हमारा शरीर छूटेगा तब भी



हमारे साथ रहकर ही नये जन्म में रहनेवाले हैं और उस समय अंतर्गत उसका उदय अवश्य होगा। चेतन के ऐसे संस्कार के उदय के कारण हमारे आध्यात्मिक रूख और वृत्ति के उच्च प्रकार के नये संस्कार गुणोत्तर रूप से बढ़ते ही रहते हैं। अगर जीवदशा के संस्कार अपने बल से हमें संसार में ही डुबाये रखते हैं, तो चेतन के ऐसे संस्कार हमें चेतनात्मक ढंग से प्रभुमय जीवन में जुड़ाये रखता है—इसे तार्किक रूप में सिद्ध किया जा सकता है। इसीलिए ही श्रीमोटा ने इस साधनाशैली को 'मौलिक' और 'अनोखी' बताई है।

श्रीमोटा कहते थे, 'यदि साधक इक्कीस दिन का मौनएकान्त एक ही जन्म में इक्कीस बार ले लेगा तो ऐसा जीव दूसरे जन्म में साधना से मुक्ति प्राप्त कर सकता है।' श्रीमोटा के इस कथन में ऐसे संस्कारों की शक्ति का गणित रहा है। श्रीमद् राजचन्द्र ने इसप्रकार का एक अभिप्राय व्यक्त किया है, 'भावनापूर्वक सत्पुरुष का किया गया संग इक्कीस जन्म के बाद मानवी को मुक्त बनाता है।' इसमें भी सत्पुरुष के संग मात्र से चेतन के जो संस्कार हमारे सूक्ष्म शरीर में पड़ते हैं, वे दूसरे जन्म में उदय होते ही दूसरे अनेक गुण नये संस्कारों को जन्म देते हैं। ऐसे संस्कारों का बल ही जीवमात्र को उसके द्वारा कुछ भी प्रयत्न किये बिने 'अपने आप' दिव्य जीवन की ओर खिंचा चला जाता है। इस अर्थ में सत्पुरुष के संग की महिमा गायी जाती है, यह यथार्थ है।

मौन सेवन करनेवाले साधक को तथा ऐसे साधक के प्रति देखने वाले समाज के अन्य वर्ग को भी सावधान रहना चाहिए। इसलिए श्रीमोटा ने कहा है, 'इक्कीस दिन तक एक या अधिक बार इस मौनएकान्त जप का सेवन होने से साधक सिद्ध हो जाता है अथवा तो उसे मुक्ति मिलती है' ऐसा अर्थ नहीं लेना है। साधक के लिए स्वयं



को हुए अनुभवों से सिद्ध या मुक्त होने का भ्रम पैदा होने की पूर्ण संभावना है। इससे विशेष तो अपनी हुई ऐसे प्रकार की साधना का थोड़ा भी विज्ञापन अपने आप्तजनों में भी पागलन (धुन) बढ़ने की संभावना होती है। इससे श्रीमोटा ने इतनी बात स्पष्ट की है। अलबत्त, ऐसी साधना पद्धति से 'हममें आध्यात्मिक जागृति आती है और बढ़ती है तथा वह (जागृति) विपरीत संजोगों में भी हमारी प्राणचेतना को टिकाये रखती है।' मौनएकान्त का सेवन करनेवाले प्रत्येक को ऐसा अनुभव होता ही है। इससे 'ऐसे मौनएकान्त यज्ञ का प्रेमभक्ति-ज्ञानपूर्वक अभ्यास होते-होते वह जीव जीवनसिद्धि को प्राप्त करता है' ऐसा श्रीमोटा ने प्रमाणित किया है। यह 'जीवनसिद्धि' की प्राप्ति के लिए आपश्रीने रखी शर्त के शब्द बार-बार चिंतन करने योग्य है। 'प्रेमभक्तिज्ञानपूर्वक' का मौनएकान्त यज्ञ का अभ्यास ही करना चाहिए। हमारे दिल में प्रभु के प्रति—चेतन के प्रति प्रेम जागना ही चाहिए। इसके बिना कुछ भी प्राप्त न होगा। प्रभुप्रेम का व्यक्त लक्षण भक्ति है। भक्ति यानी आसक्ति बिना का कर्म। आसक्ति का मूल अहं है। 'कर्ता मैं नहीं हूँ' पर प्रभु की शक्ति से ही सब हो रहा है, ऐसे जागृत ज्ञान के साथ होती क्रिया भक्ति-ज्ञान है। इससे 'मौन एकान्त यज्ञ द्वारा जागी हुई चेतना का सदुपयोग अपने नित्य के कार्य में जागृतिपूर्वक करना चाहिए और नामस्मरण भी जारी रखना चाहिए।' ऐसा श्रीमोटा ने दृढ़तापूर्वक आदेश दिया है।

इस मौनएकान्त जपयज्ञ में बैठनेवाले जीवों को अद्भुत आध्यात्मिक अनुभव होते हैं। उसमें 'आश्रम के अधिष्ठाता (पूज्य श्रीमोटा) शरीर से उपस्थित न होते हुए भी उनकी सूक्ष्म प्रत्यक्ष उपस्थिति के अनुभव' लगभग प्रत्येक जन को होते हैं। श्रीमोटा ने स्वयं ही १९५८ में हकीकत लिखी है। आज '१९९६' में आपश्री के देहविलय



को भी बीस वर्ष हो चुके हैं। इन सभी वर्षों के दौरान मौनएकान्त में बैठनेवालों को श्रीमोटा की सूक्ष्म उपस्थिति के अनुभव होते हैं। हरिःॐ आश्रम में मौनएकान्त साधना का प्रारंभ १९५० में हुआ। प्रारंभ के वर्षों में श्रीमोटा आश्रम में उपस्थित हों उस दौरान आपश्री आवश्यकता लगने पर वे मौनएकान्त कक्ष में स्वयं जाते और अंदर बैठे साधक को आवश्यक सूचना देते, तो कभी उसके शरीर का स्पर्श कर कुछ विधि करते, जिससे उसके विघ्न दूर होते। १९६२ से श्रीमोटा ने 'लोककल्याण के काम' प्रारंभ किये तब से आश्रम के बाहर रहने का बढ़ गया। इससे एक बार श्रीनंदुभाईने श्रीमोटा से पूछा था, 'हम बाहर रहेंगे तो यहाँ कक्षों में बैठे साधक को कोई कठिनाई होगी तो आपकी उपस्थिति के बिना क्या होगा?' तब श्रीमोटा ने मार्मिक उत्तर दिया, 'अब मुझे स्वयं वहाँ जाने की आवश्यकता नहीं है।' तात्पर्य, अब आपश्री सूक्ष्म ढंग से कमरे में जाएँगे। आश्रम की स्थापना से आज दिन तक अंतिम अड़तीस साल से श्रीमोटा की सूक्ष्म उपस्थिति इन मौन एकान्त कक्षों में होती ही है। आपश्री की 'सूक्ष्म प्रत्यक्ष उपस्थिति' के लक्षण भी हैं। अंदर बैठनेवालों को कभी भी 'अकेलापन' का अनुभव नहीं होता। कुछ भी असमंजस या घबराहय होते ही तुरन्त प्रार्थना करने का स्फुरण होता है और प्रार्थना होते ही समाधान हो जाता है। अंदर होती सभी क्रियाएँ अपने आप सहजता से होती जाती हैं। इसके अलावा जीवन परिवर्तन की प्रेरणा मिलती है। इसके लिए उचित भावपूर्ण भूमिका का निर्माण होता है। श्रीमोटा लिखते हैं, 'कितनों को उनके भूतकाल के प्रसंग, विचार, भावनाओं के आघात आदि मूर्तस्वरूप लेकर सिनेमा की रील हम देख रहे हों वैसे उसके आगे प्रत्यक्ष होता है। ये दृश्य भी इतने अधिक तादृश रूप स्पष्ट और



जीवन्त दीखते हैं कि मौन लेनेवाला व्यक्ति (जीव) यह सब देखकर स्तब्ध हो जाता है; उसमें पछतावे की ललक उठती है और दुबारा ऐसा आचरण न करने की तथा जीवननौका के बहाव की दिशा ही बदल डालने की प्रेरणा वे हूबहू दृश्य उसे देते हैं।' ऐसे सबकोन्शियस अवचेतना में रहे विचार भाव 'मूर्त स्वरूप' में दृश्यमान होते हैं, ये सभी श्रीमोटा की सूक्ष्म उपस्थिति का ही परिणाम है।

इसके अलावा 'दिव्यदर्शनों (vision), दिव्य ध्वनियों का श्रवण, प्रकाश के दर्शन, भविष्य में होनेवाले प्रसंगों के पहले से ही चित्र' प्रत्यक्ष अनुभव होते हैं। ऐसे कितने ही प्रसंगों के लिए श्री नंदुभाई ने लिखे पुस्तक 'आश्रम की अट्टालिका से' पढ़ें। ऐसे अनुभव हमारे भावी आध्यात्मिक जीवन की संभावनाओं की निशानी हैं। साधक को ऐसे अनुभवों के आधार पर अपने जीवन की दिशा बदलने का पुरुषार्थ करने की प्रेरणा लेनी होती है। ऐसे अनुभवों को प्युक्त करना उचित होता नहीं अथवा ऐसे अनुभवों से हम सिद्ध हो रहे हैं, ऐसे भ्रम में भी नहीं पड़ना है।

इसके अलावा श्रीमोटा की 'सूक्ष्म प्रत्यक्ष उपस्थिति' के दो विशिष्ट लक्षण हैं :

(१) मौनएकान्त कमरे में कितने भी दिन क्यों न बितायें हों, तब भी बार-बार मौनएकान्त साधना के लिए कमरे में जाने का मन होता है। ऐसे अंधेरे एकान्त सेवन की वृत्ति रहे, उसके प्रति आकर्षण बढ़े यही 'श्यामसुंदर श्रीकृष्ण' का प्रत्यक्ष दर्शन है। फिर चाहे कितने ही दिन तक एकान्त में रहने के बाद बाहर निकलते ऐसा अनुभव होता है कि अभी हम अंदर गये थे और मानो तुरन्त ही बाहर आ गये हों। स्थान-समय की सापेक्षता अदृश्य होकर अनोखी निरपेक्षता का ऐसा अनुभव तो श्रीमोटा के कालातीत अनुभव को ही आभारी हो सकता है।



(२) मौनएकान्त के दौरान तथा बाहर निकलने के बाद भी दिव्य आनंद, उत्साह, उल्लास और हर्ष का सतत अनुभव रहा करता है । अंधेरे एकान्त कमरे का आनंद यह प्रगट परमात्मा की प्रत्यक्ष उपस्थिति का अनुभव प्रमाण है । इन्द्रियातीत आनंद ही आत्मानंद है । ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव ही श्रीमोटा की सूक्ष्म उपस्थिति का बड़ा प्रमाण है ।

इस तरह हरिःॐ आश्रम यानी मौनएकान्त जपयज्ञ के लिए यज्ञशालाएँ, आध्यात्मिक जीवन के प्रति जागृत करती श्रीमोटा की प्र-योगशालाएँ, जीवदशा का मल-विक्षेप और आवर को भस्म करती शोधनशालाएँ और अंदर बैठनेवाले साधक को अपूर्व अग्निस्नान करा कर शुद्ध, पवित्र, तेजस्वी बनाती प्रभु प्रेम की सुवर्ण सरिताएँ हैं ।

‘हरिःॐ आश्रम’ नाम के स्थान में इन कक्षों में जो बैठे हैं, उनमें ‘प्रभु’ जागृत हो रहे होने से उनकी सेवा यह प्रभु सेवा है । इसके लिए उनकी सेवा के लिए स्वेच्छा से जुड़े आश्रमवासीओ ‘सेवक’ हैं । इसके अलावा ‘इस स्थान’ की सजीवता का स्पर्श अनुभव करने आते मुलाकात लेनेवाले भी होते हैं । कक्षों के बाहर भी कुछ प्रवृत्तियाँ हुआ करती हैं । श्रीमोटा के आश्रम की प्रवृत्ति पर ‘विशेष प्रकाश’ पड़े उसके लिए ‘आश्रमवासियों को सूचनाएँ’ दी गई हैं । यह सूचनाएँ नियम रूप में प्रस्तुत की गयी हैं और नड़ियाद तथा सुरत के आश्रमों में सभी पढ़ सकें इस ढंग से सूचनाएँ रखी गयी हैं ।

इसमें से प्रस्तुत दस सूचनाओं में से सात सूचनाओं के पीछे रहा आध्यात्मिक हार्द तत्त्व मननीय-चिंतनीय है । (देखिए परिशिष्ट : ४)



४. एक अनोखा अनुपम स्थल

श्रीमोटाने हरिःॐ आश्रम के परिसर को 'आश्रम' के रूप में नहीं बतलाया है, परन्तु उसे 'स्थल' के रूप में बतलाया है। 'स्थल' का विशिष्ट अर्थ समझने के लिए अंग्रेजी में 'place' नहीं, किन्तु 'space' उचित है। इस अर्थ में आपश्री ने आश्रम को 'स्थल' कहा है। इस 'स्थल' पर से 'श्रीभगवान की चेतनाशक्ति, भावना' का प्रसरण 'अपनेआप' होता है। हरिःॐ आश्रम हेतु इस यथार्थ को सिद्ध करने हेतु बहुत से प्रमाण प्रस्तुत किये जा सकते हैं। श्रीमोटा ने 'इस स्थल' का उद्देश्य स्पष्ट करने से पहले 'हयाती' शब्द रखा है, यह मार्मिक है। 'हयाती' में 'होनेपन' का अर्थ है। 'होनापन' अत्यन्त विशिष्ट शब्द है। श्रीमोटा ने चेतन का — प्रभु का 'होनापन' बार-बार समझाया है। इस अर्थ में हरिःॐ आश्रम — स्थल की हयाती — 'होनापन' मात्र देखना, जानना, समझना पर्याप्त नहीं है, किन्तु अनुभूति लेने, अनुभव प्राप्त करने में हैं।

इस स्थल की हयाती किसके लिए है? श्रीमोटा ने पहली सूचना में उसकी स्पष्टता करते हुए लिखा है, 'इस स्थल की हयाती मात्र जीवनविकास के उद्देश्य कार्य के लिए ही है यानी कि श्रीभगवान के अनुभव तथा भावनामय जीवन के कार्य के लिए ही है।' श्रीमोटा की जीवनशैली की एक विशिष्टता है कि किसी भी बात में उसका उद्देश्य सर्वप्रथम स्पष्ट करते हैं। 'उद्देश्य की जागरूकता' यह ज्ञान है। इसलिए आपश्री ने आश्रम का उद्देश्य स्पष्ट किया है। श्रीमोटा के दर्शन में 'जीवनविकास' शब्द बार-बार आता है। वे 'जीवनविकास' का गूढ़ अर्थ समझाते लिखते हैं, 'जीवनविकास यानी कि श्रीभगवान का अनुभव तथा श्रीभगवानमय जीवन।' तो इस स्थल पर आकर तथा



इस स्थल पर रहकर हम क्या करें तो श्रीभगवान का अनुभव प्राप्त हो तथा श्रीभगवानमय जीवन जीने के लिए भाग्यशाली बन सकें ? श्रीमोटाने इसके लिए पद्धति बतलायी है। 'जिस जीव को जीवन के विषय में मनन, चिंतन और निदिध्यासन करना है और वह जीवन में प्रत्यक्ष आकार ले ऐसे मंथन में रहने को दिल हो, अपने जीवन के विषय में गहरायी से पृथक्करण कर करके स्वयं को खोजने की जिसकी तमन्ना हो उसके लिए यह स्थल है।'

सर्वप्रथम जीवन के विषय में मनन, चिंतन और निदिध्यासन करने का हमारा 'दिल' हो यह आवश्यक है। मनन मन से होता है, चिंतन में गहरायी होती है, हार्द खोजने का भाव होता है, तात्पर्य पाने की उत्कटता होती है।

निदिध्यासन में गहन चिंतन की निरंतरता होती है। जिसकी खोज करनी है, जिसका रहस्य समझना है वे सतत हमारे मन, बुद्धि में रमा करें, यह आवश्यक है। इस तरह मनन, चिंतन और निदिध्यासन करना होता है। सर्वप्रथम हमें अपने जीवन की वर्तमान स्थिति से असंतोष होना चाहिए और उससे उच्च ढंग के जीवन के विषय में विचार जागृत होना चाहिए। यानी जीवन क्या है ? हमारा सुख-दुःख किसके कारण है ? हम पृथ्वी पर क्यों आये हैं ? हमें प्राप्त संबंधों के पीछे रहस्य क्या है ? हमारे सुख-दुःख कौन-से कारण से हैं ? मृत्यु किस लिए है ? जन्म से लेकर मृत्यु तक के समय में जो घटनाएँ घटती हैं, उसका कारण क्या है ? धन, संतान, कीर्ति, सत्ता आदि की आतुरता किस लिए ? इन सभी का परस्पर संबंध क्या है ? हमारे में किसी के प्रति भाव, स्नेह, चीढ़, तिरस्कार, धिक्कार आदि क्यों जागते हैं ? हम इन सभी में क्यों खींचे चले जाते हैं ? आदि अनेक प्रश्न परम्परा हम में मनन, चिंतन प्रेरित करते हैं। हमारे में से अधिकतर



लोगों के मन में ऐसे प्रश्न जागते हैं सही, परन्तु ऐसे उत्तर की खोज में गहरायी से न उतरने के कारण चिंतन अटक जाता है और संस्कार वेग से स्वभाववश कर्मों के पीछे चले जाते हैं ।

कभी हम आध्यात्मिक विधान भी करते हैं—‘क्या लाये हैं और क्या लेकर जाएँगे?’ यह सब तो माया है । मोह-ममता क्यों रखें ? सब कुछ यही रखकर चले जाना है तो किसलिए ईर्ष्या, द्वेष और फिसाद ? इन सब बातों के पीछे अधिकतर हम परिस्थिति या संयोगों से भागना चाहते हैं । इसलिए श्रीमोटा कहते हैं इस तरह जीवन के विषयक मनन, चिंतन और निदिध्यासन में से जो प्रत्यक्ष आकार ले वैसे मंथन में रहना चाहिए । ऊर्ध्व जीवन के लिए भावनाओं को जीवन में प्रत्यक्ष आकार लेते अनुभव करने के लिए मात्र मनन, चिंतन काम नहीं आते । केवल विचारा हुआ या समझा हुआ अमुक विपरीत परिस्थिति या संयोग उपस्थित होने पर श्रीमोटा कहते हैं, वह तो कपूर की तरह उड़ जाता है । अतएव ऊर्ध्वजीवन हेतु भावनाओं को प्रतिदिन के व्यवहार जीवन में चरितार्थ करने के लिए प्रयत्न करना पड़ता है ।

ऐसा मंथन किस प्रकार होता है ? ऐसे प्रश्न उठें, यह स्वाभाविक है । जमी हुई दही में से मक्खन प्राप्त करने के लिए उसमें पानी डालकर निश्चित समय तक निश्चित प्रकार के लय में बिलोना पड़ता है । इस तरह हम में जागी भावना को हमारे जीवन में साकार करने के लिए हमें अपने जीवन के विषय में तलस्पर्शी पृथक्करण करते रहना चाहिए । हमारी प्रत्येक बाह्य क्रिया के पीछे हमारा मन, बुद्धि, चित्त में कौन से भाव हैं और क्रिया के दौरान हमारा अहंकार किस रूप में काम कर रहा है, यहाँ जाँचते रहना चाहिए । इसके साथ-साथ हमारे में काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, आशा, इच्छा, तृष्णा, लोलुपता आदि किन लक्षणों से काम कर रहे हैं, उसे जाँचना चाहिए । ऐसा



पृथक्करण इस मंथन का पहला प्रकार है। हमारी वृत्तिओं की शक्ति का माप निकालकर उसे भोगने में हमारी स्थिति कैसी होती है ? उसका उपयोग जीवन के विकास के लिए किस तरह से कर सकते हैं ? इसका पृथक्करण करना चाहिए। हमारे सुख-दुःख आदि के कारण रूप हम ही हैं, तब भी दूसरों में दोष ढूँढते हैं। ऐसी हमारी बहिर्मुख विचार वृत्ति की धारा को भी जाँचना चाहिए। ऐसे पृथक्करण से हमारी प्रकृति और स्वभाव का स्वरूप हमें समझ आएगा और अपने आप ऐसे मंथन को प्रेरित करनेवाली प्रभु की चेतनाशक्ति की झाँकी होगी।

मंथन का दूसरा प्रकार 'स्वयं को खोजने की तमन्ना' जगाने में हैं। हमें उपरोक्त रूप से बहिर्मुख भाव को हमारे अंदर मोड़कर हमारी प्रकृति, स्वभाव और वृत्ति, झुकाव को समझने के लिए मंथन कर सकते हैं। उसके कारण यह सारा हमारा वास्तविक स्वरूप नहीं है, इसकी चेतना जागती है। फलस्वरूप ऐसे पृथक्करण करनेवाली शक्ति हमसे अलग हुई है इसका ख्याल हमें जगता है। इसमें से हम सचमुच में कौन हैं ? 'मैं कौन हूँ ?' ऐसा तात्त्विक प्रश्न हम में जगता है और इसके साथ हम 'स्वयं' को खोजने का मंथन करते हैं। हृदय में ज्ञानप्रकाश प्राप्त करने की यह पद्धति है। जिसे इस दिशा में जीवननौका को मोड़ने का दिल हो और तमन्ना हो, उनके लिए हरिःॐ आश्रम का 'यह स्थान अस्तित्व' रखता है। इसलिए श्रीमोटा ने स्पष्ट सूचित किया है, 'खाली खाली पड़े रहने के लिए यह स्थल नहीं है।'

इसके पश्चात् का सूचना वाक्य अत्यन्त स्पष्ट होने के साथ बहुत ही मार्मिक है। श्रीमोटा लिखते हैं, 'मकान उपयोग रहित रहेगा तो कोई बाधा नहीं है, किन्तु यदि यहाँ जीव निरर्थक पड़े रहेंगे तो बहुत बड़ी बाधा है।' इसमें श्रीमोटा ने उपयोग किया 'उपयोगरहित' शब्द ध्यान



देने योग्य है। 'उपयोगरहित और बंद रहे हुए निवास स्थल' के लिए 'उपयोगरहित' शब्द उपयोग किया गया है। हरिःॐ आश्रम का मकान मनुष्यों बिना का—उपयोगरहित रहे उसमें श्रीमोटा को 'कुछ भी' आपत्ति नहीं है। मकान तो ईंट चूने के हैं और वह स्थल है। श्रीमोटा की दृष्टि से जो कुछ भी स्थूल है, उसका उपयोग हम में सूक्ष्म को उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त है। 'इस स्थल' पर आनेवाले मनुष्य यहाँ रहनेवाले मनुष्य स्थूल देहवाले होने पर भी अंदर से सचेतन हैं। जिसमें चेतन बसता है, उसमें प्रभु निगूढ़ रूप में रहते हैं। इस प्रकार यहाँ रहते या आनेवाले जीव 'उपयोगरहित मकान जैसे रिक्त' नहीं रहने चाहिए। जो जीव अपने में रहे चेतन को व्यक्त होने देने में अपने समय का उचित उपयोग न करना चाहते हों, न सोचते हों, ऐसे जीवन 'रिक्त' गिने जाते हैं। केवल स्थूल में ही पड़े रहनेवालों को लिप्त कहे जायेंगे। 'यह स्थल' पर ऐसे जीव उपयोगरहित पड़े रहे तो उसमें बड़ी बाधा है। इसे दृढ़ रूप में दूसरे ढंग से समझें ऐसा कड़क रूप में सूचित किया गया है।

इससे स्पष्ट होता है कि हरिःॐ आश्रम का स्थान किसलिए है। मुझे एक प्रसंग का स्मरण हो रहा है। १९७४ में नडियाद के हरिःॐ आश्रम के एक भाई ने बहुत संकोच के साथ श्रीमोटा से पूछा, 'मोटा, आप हैं तब तक तो आश्रम ठीक ढंग से चल रहा है। परन्तु नहीं होंगे तब आश्रम कैसे चलेगा?' श्रीमोटा ने कहा कि, 'मैं नहीं होऊँगा तब आश्रम का क्या होगा, ऐसा विचार किसलिए? मेरे रहने पर भी यह आश्रम न रहे तब भी मुझे कोई आपत्ति नहीं है। किन्तु तुम उन्नत बनो और उन्नत बने रहो यह महत्त्वपूर्ण है।'

श्रीमोटा का यह सटीक और चेतनात्मक उत्तर हम सभी को चेतावनी देता है। स्वयं के देह त्याग से पूर्व श्रीमोटा ने श्री नंदुभाई को



कहा था वह स्मरण हो रहा है कि, 'यदि आश्रम का उपयोग न हो सकेगा ऐसा लगे तो बेधड़क उसे सरकार को उसके उपयोग के लिए सौंप दें।'

यह दोनों तथ्य सिद्ध करते हैं कि श्रीमोटा का यह हरिःॐ आश्रम हम सभी के लिए 'जीवनविकास की भावना' पैदा करने और उसी के अनुसार जीवन जीने के लिए मंथन प्रेरित करनेवाला 'स्थल' है। वहाँ श्रीभगवान की चेतनाशक्ति सविशेष रूप से सक्रिय है, इससे इस प्रकार जीने के लिए हम सभी को आंतरिक सहायता मिलती है। 'इस स्थल' की सचेतनता का ज्ञानभक्ति से उपयोग होने पर यह आश्रम हम सभी के लिए आध्यात्मिक अर्थ में आश्रय बना रहेगा।

मौन एकान्त रखनेवाले तथा आश्रम के प्रति भावना रखने वालों के लिए आश्रम में समय बिताने का तरीका श्रीमोटा ने सूचित किया है। 'अपना समय धार्मिक और आध्यात्मिक पढ़न में, सुबह-शाम अपनी अपनी प्रार्थना, ध्यान आदि में बितायें। उपन्यास जैसे कल्पना प्रधान और मनोरंजन साहित्य पढ़ने की आपश्री ने 'मनाही' की है। अखबार पढ़ने की भी जरूरत नहीं है। और आवश्यक लगे तो आश्रम के संचालक, कार्यकर्ता ऊपर ऊपर से देख लें। आश्रम में इकट्ठे मिलकर 'राजकीय, व्यापारी, व्यवहार की, खेती की या संसार सम्बन्धित' बातें करने का श्रीमोटा ने निषेध किया है। इसके अलावा 'कोई भी किसी दूसरे विषय में बात न करें' ऐसा बतलाया है। इस निषेध का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार की बातों में हमारा मन-मति रुचि लेगा, उस प्रकार के संस्कार हमारे चित्त में पड़ेंगे और ऐसे नकारात्मक तथा क्षुल्लक संस्कारों के उदय होते ही वे हमें निम्नगामी वृत्ति की ओर खींचेंगे। फलस्वरूप जीवन की पतित दशा का निर्माण होगा।



किन्तु जहाँ दो मनुष्यों से अधिक इकट्ठे हों वहाँ बातचीत तो होगी ही। इससे किस प्रकार की बातें करनी हैं, उसे भी श्रीमोटा ने सूचित किया है। 'धर्म या जीवनसाधना की बातें करनी हैं। स्वयं अपने जीवनविकास के विषय में समझ या जैसे क्षेत्र के अनुभवों का आदान-प्रदान जरूर कर सकते हैं। आश्रम में परस्पर मिलनेवाले व्यक्ति 'अनुभवों का आदान-प्रदान जरूर कर सकते हैं'। परन्तु वे अनुभव जीवनविकास के क्षेत्र के होने चाहिए। कोई छोटे-छोटे चमत्कार, घटना या संसारी प्रकार की सफलता के अनुभवों को श्रीमोटा की कृपाशक्ति के साथ न जोड़कर, इस स्थल के प्रताप से पहले से हमारे स्वभाव में और हमारी वृत्ति में कितना अंतर आया है तथा परिस्थिति और घटना की तरफ देखने की विधेयात्मक दृष्टि कितने प्रमाण में बढ़ी है आदि अनुभवों की परस्पर आदान-प्रदान करने से आंतरिक बल बढ़ाता है। ऐसी बातों से मन को आनंद-शांति में बहला सकते हैं।

श्रीमोटा ने 'इस स्थल में सभी जितना बन सके शांति बनाये रखें' ऐसा सूचित कर इस विषय में अधिक स्पष्टता करते लिखा है, 'इसका अर्थ ऐसा नहीं है कि मुक्त कंठ से हास्य या दूसरी आनंद ध्वनि न हो, वह तो अवश्य कर सकते हैं, मन को आनंद-शान्ति में बहलायें ऐसी दशा में ही रहना चाहिए।' शान्ति बनाये रखने का अर्थ निष्क्रियता, गंभीरता और उदासीनता नहीं है; किन्तु शान्ति की पूर्व भूमिका में आनंद है। जहाँ आत्मा प्रगट हो वहाँ आनंद होगा ही। **आनंद और शान्ति आत्मा के व्यक्त लक्षण है।** इससे श्रीमोटा ने भारपूर्वक ऐसी दशा में ही रहने को बतलाया है। हास्य और आनंद ध्वनि शान्ति के विक्षेपक नहीं है, परन्तु यह हास्य या आनंद आत्मा के उल्लास के संदर्भ में प्रगट होना चाहिए। इसकी भूमिका स्थूल नहीं होनी चाहिए।



जैसे 'इस स्थल' पर दो से अधिक व्यक्ति इकट्ठे मिलने पर बातचीत करें, यह स्वाभाविक है। उसी प्रकार कभी परस्पर संबंधभाव भी धारण कर लें, यह भी संभव है। इससे निपटने के लिए श्रीमोटा ने एक मार्मिक सूचना दी है। आपश्री लिखते हैं, 'यहाँ कोई जीव संसार नहीं भोग सकता।' **संसार भोगना अर्थात् विषयभोग भोगना।** 'यहाँ' यानी कि आश्रम में रहनेवाला तथा आकार कितना ही समय बितानेवाला व्यक्ति संसार इसलिए नहीं भोग सकेगा क्योंकि 'यहाँ किसी भी प्रकार के संसारी नातों का संबंध नहीं है।' श्रीमोटा ने 'सगाई का संबंध' ऐसे शब्दों का उपयोग किया है, इससे आश्चर्य होता है। 'सगाई' और 'संबंध' का हमें एक ही अर्थ समझ में आता है। परन्तु सचमुच में ऐसा नहीं है। श्रीमोटा यहाँ 'संसारी प्रकार की सगाई' की स्पष्टता करते हैं।

संसारी प्रकार की सगाई के मूल में ईर्ष्या-द्वेष तथा लड़ाई होती है। ऐसे 'संसारी प्रकार' के दो सगाई से सम्बन्धित दृष्टान्त दिये गये हैं। श्रीमोटा बतलाते हैं, 'यहाँ कोई पति नहीं है या पत्नी नहीं है। कोई सासू नहीं है या कोई बहू नहीं है।' यहाँ पति-पत्नी की सगाई में पुरुष और स्त्री है और सासू-बहू की सगाई में दोनो स्त्रियाँ हैं। हमारे मन में प्रश्न उठेगा कि संसारी प्रकार की सगाई में श्रीमोटा ने भाई-बहन, माँ-बेटी, पिता-पुत्र जैसे संबंध क्यों नहीं लिये मात्र 'पति-पत्नी' और 'सासू-बहू' के संबंध का उल्लेख किया? संसारी प्रकार के इस संबंध के मूल कारण में टकराव और ईर्ष्या-द्वेष है। इन दो प्रकार की सगाइयों में अधिक अनुपात में संघर्ष, अशांति और झगड़ा हुआ करता है। इसके मूल में परस्पर स्वामित्व का भाव है। पति-पत्नी के बीच में तो मालिकी का भाव तीव्र होता है और आशा-अपेक्षा एवं बदला लेने की प्रबल भावना होती है। इसीलिए 'सगाई'



पर का संसारी प्रकार धारण नहीं कर सकते। सासू-बहू की सगाई के मूल में 'पुत्र' तथा 'पति' की सगाई में रहे एक ही व्यक्ति पर दो स्त्रियों के स्वामित्व भाव को भोगने के रोब से टकराव अधिक होते हैं। फिर स्वयं की लम्बे समय तक की वर्चस्व की भागीदारी या आधिपत्य के लिए खड़ी हुई स्पर्धा में से तीव्र आग्रही वृत्ति जन्म लेती है। यह कलह, झगड़ा, विखवाद और विच्छेद तब बिफरता है। 'संसारी प्रकार की यह दो सगाई' इन स्थान पर भोगनी नहीं है, इसका तात्पर्य मात्र इतना ही है कि यहाँ कोई भी किसी पर जोर जबरदस्ती, मालिकीभाव, आग्रहीवृत्ति, आधिपत्य, सत्ता या पद के अहंकार को नहीं जागने देना है। इन संसारी प्रकार की सगाई के संबंध के अलावा जो संबंध है, यह भाव संबंध है। यहाँ परस्पर ऐसा भाव संबंध रखना है।

इसी से 'यहाँ आकर कोई इसने ऐसा क्यों किया और ऐसा क्यों नहीं किया ? ऐसे विचार का सेवन मन में नहि करना, कोई किसी की आशा-अपेक्षा भी न रखे ऐसा श्रीमोटाने सूचित किया है। 'ऐसा क्यों किया और ऐसा क्यों नहीं किया'—ऐसे विचार का सेवन नहि करने से हम अन्य की प्रकृति से अलग रह सकते हैं। हर एक व्यक्ति अपनी प्रकृति के गुण की प्रधानता के अनुपात में अपने चित्त में से उदय होते संस्कार बल के स्वभाव अनुसार बरतता है। ऐसा सोचने से हम अलग रहते हैं। 'ऐसा क्यों किया ?' या 'ऐसा क्यों नहीं किया ?' ऐसे विचार मन में आयें तो हमारे अंदर सामने की व्यक्ति की प्रकृति में की विकृति जन्म लेती है। संसारी सगाई के संबंधो में हम प्रकृति की विकृति का कचरा हमारे मन-चित्त पर इकट्ठा किया ही करते हैं, इसका पता हमें नहीं चलता है। 'पत्नी क्यों ऐसा आचरण करती है ? बेटा या बेटी कहे में क्यों न रहें ? सासू-बहू के संबंध में उदारता और



त्याग क्यों नहीं आता ? अमुक जन को ऐसा ही आचरण करना चाहिए था तब भी ऐसा क्यों नहीं किया ?' ऐसे विचारों के सेवन से हमारा मन अशांत होता है। अतएव तो जिससे जो होता हो उसे देखा करें और यह सब स्वयं अपनी प्रकृति से हुआ करता है, इतना ही समझें। 'क्यों ?' प्रश्न से अपने अंदर विकृति न आने दें।

इसी सिद्धान्त के लिए 'कोई किसी की आशा अपेक्षा भी न रखे' ऐसा कहा गया है।

हरिःॐ आश्रम में जानेवाले, रहनेवाले और स्थायी निवास करनेवालों के लिए यह आचारसंहिता है। श्रीमोटा द्वारा दी गई इन सूचनाओं में कहीं आग्रह का वचन नहीं है, उल्टा अत्यन्त नम्रभाव और प्रेमभाव है। इसका अर्थ ऐसा नहीं कि हमारे लिए यह सारे विकल्प हैं। जिस चेतनाशक्ति के बाहक बनने हम आश्रम में जाते हैं, रहते हैं और बसते हैं उनके सूचक शब्द के प्रति सावधान बनें यानी कि आपश्री के कथन का तात्पर्य समझें। उन शब्दों के प्रति वफादार रहने की कोशिश करें — यानी कि उसी के अनुसार आचरण में रहने की भावना दृढ़ करें और ऐसे शब्द के भावार्थ के प्रति प्रामाणिक बनें—मतलब कि ये शब्द—प्रमाण मान्य रखें—उनका हार्द विचारें, चिंतन करें और उसी तरह जीने के लिए संकल्पबद्ध हों।

इस अर्थ में हरिःॐ आश्रम 'श्रीभगवान के अनुभव तथा श्रीभगवानमय जीवन के लिए' का आध्यात्मिक स्थान है—जहाँ प्रभु की चेतनाशक्ति सक्रिय है और जहाँ से इस चेतनाशक्ति का प्रवाह सभी दिशाओं में फैल रहा है।



खण्ड : २

श्रीमोटा प्रेरित 'लोककल्याण के कार्य'

१. प्रभु प्रेरित कार्य

श्रीमोटा को १९३९ में बनारस में अद्वैत का साक्षात्कार हुआ। 'स्वयं' श्रीहरि रूप है ऐसा अनुभव निरन्तर विकसित होता रहा। 'स्वयं हरिरूप' होने पर भी स्थूल शरीर तो था ही। ऐसे स्थूल शरीर में प्रगट हुए हरिरूप अनुभव रूप में मात्र हृदयस्थ ही नहीं था। चेतना के गुणधर्म के रूप में वे सर्वत्र थे। इससे स्वयं शरीरधारी रूप भले एक ही स्थान पर दीखते हों तब भी चेतन के हरि के अनुभव रूप में सर्वत्र हैं। 'मैं सर्वत्र विद्यमान हूँ' इन उद्गारों में से 'मैं' यह हरिरूप हैं। स्वयं के 'होनेपन' का ऐसा ठोस अनुभव आध्यात्मिक विज्ञान के रूप में सतत विस्तरित और विकसित होता ही रहा।

१९३९ पश्चात् श्रीमोटा के अनुभव आध्यात्मिक अनुभवों की विकसित कक्षा का प्रमाण देते हैं। श्रीमोटा ने १९५० में दक्षिण भारत में कुंभकोणम् में 'हरिःॐ आश्रम' की स्थापना की। जो कोई जीव इच्छा करें उसे प्रभु पंथ दिखलाने के लिए मौन एकान्त की साधना बतलायी और स्वयं प्रत्यक्ष उपस्थित रहे बिना एकान्त में बैठे श्रेयार्थी को मार्गदर्शन देते थे। १९५५ में नडियाद और १९५६ में सुरत में आश्रम स्थापित किये। और मौनएकान्त कक्ष की साधना पद्धति का विस्तार किया। स्वयं हरिरूप सर्वत्र होने पर भी श्रीसद्गुरु रूप में श्रेयार्थी के उत्पन्न समीप रहकर मौन एकान्त के समय अंतर्गत उसके जीवन का विकास प्रेरित करते रहे। और अनेक प्रकार की सूक्ष्म विधियों से श्रेयार्थी के अंतःकरण को संस्कार देते रहे। ऐसे मौन कक्षों



में श्रीमोटा की 'स्वयं' की उपस्थिति अनेक रूपों में अनुभव होती है। ऐसे कक्षों को आपश्री ने 'आध्यात्मिक जीवन की प्रयोगशाला' रूप में बतलाया। सचमुच ये कक्ष श्रेयार्थी के लिए तो जीवन की शोधशाला के रूप में हैं। एक अनोखे प्रकार की रिफाईनरी है। अनेक जन्मों के संस्कारों को उलीचकर चित्र पर उसकी असर न पड़े इस तरह जाने दें और इस ढंग से उसे भस्म करने की अद्भुत शोधनक्रिया चलती है।

हरिःॐ आश्रम में इस तरह जीवात्मा के कल्याण सिद्ध करने हेतु 'स्वयं' प्रेरक और प्रणेता हो रहे थे। ऐसी प्रयोग पद्धति आज भी चल रही रही है। आज श्रीमोटा का शरीर विद्यमान न होने पर भी हरिःॐ आश्रम (नड़ियाद, सुरत) के मौन मंदिरों में 'मोटा' की चेतन रूप उपस्थिति से सचेतन है। अंधेरे एकान्त में बैठनेवाले श्रेयार्थी को 'किसी' का साथ — सहकार और सहचार अनुभव होता ही है। १९५० से १९६० के दशक पूरा होने पर आध्यात्मिक प्रयोगवीर श्रीमोटा में विशिष्ट स्फुरण हुआ।

साधना का प्रारंभ करते श्रीमोटा के सद्गुरु पूज्य श्रीकेशवानंद धूणीवाला दादा ने आदेश दिया, 'तुम्हें संसार में रहकर साधना करनी है और प्राप्त कर्म प्रभु के प्रति आचरण करने हैं।' आपश्री ने स्वयं को 'परम पद' का—प्रभु का अनुभव हुआ वहाँ तक इस आज्ञा को ही लक्ष्य में रखा था। उसके बाद भी यदि कोई प्रभु प्रेरित कर्म आ मिले उन्हें भी प्रभु प्रीत्यर्थ ही किए। परन्तु साधना दौरान के कर्म और अनुभव दशा प्राप्त होने के पश्चात् के कर्मों के बीच जमीन-आसमान जितना अंतर है। साधना दौरान आ जाते कर्म संचित और प्रारब्ध कर्म थे। ये कर्म प्रभुप्रीत्यर्थ आचरण करते हुए इन कर्मों के संस्कार चित्त पर नहीं पड़ते थे। 'प्रभु प्रीत्यर्थ' होते इन कर्मों का



‘मैं कर्ता नहीं ।’ परन्तु जो संस्कार रूप में संचित है उसका यह उदय है । इस तरह कर्म आचरण करने से कर्म में से मुक्ति मिलती थी और प्रभु पद के अनुभव पश्चात् के कार्य प्रभु प्रेरित थे । स्वयं को ‘अपने में से’ कर्म का आदेश उगता था । और श्रीमोटा उसे प्रभुप्रीत्यर्थ ऐसी लिक्षण कला से आचरण करते थे कि उस कर्म द्वारा व्यक्ति के हृदय में प्रभुभाव उद्भव होता । भावना जागृत होती । जीवन की दृष्टि बदल जाती । इस अर्थ में पूज्य श्रीमोटा द्वारा प्रेरित कार्यों को पूर्ण करने हेतु जो भी जुड़ते, वे आपश्री के यज्ञकार्य में अनजने में भी अपने कर्म द्वारा आहुति देते थे । वे चित्त में चेतन के संस्कारों के बीज आरोपित करते थे ।

१९६० के आसपास आपश्री ने एक आश्चर्यजनक अलौकिक हकीकत को लौकिक भाषा में प्रस्तुत किया था । ‘मेरे गुरु महाराज ने मुझे आदेश किया कि ‘अब तुम लोककल्याण का काम करो । एक करोड़ रुपए का काम करो ।’ श्रीमोटा ने कहा, ‘प्रभु ये रुपए मैं कहाँ से लाऊँ ?’ गुरुमहाराज ने कहा, ‘वे रुपए तुम्हें लोगों के पास से प्राप्त करने हैं ।’ श्रीमोटा ने कहा, ‘लोगों के पास से लिए पैसों का ऋण मैं कब चुका सकूँगा ?’ गुरुमहाराज ने कहा, ‘इसकी तुम चिंता मत करो । जो लोग तुम्हें देंगे उसका बदला मैं दे दूँगा ।’

श्रीमोटा ने प्रभु-प्रेरित कार्य के मूल स्रोत को इस सरल लौकिक भाषा में प्रस्तुत किया । प्रभु-प्रेरित प्रभु का कार्य प्रभु-प्रीत्यर्थ किस तरह हो रहा है इसकी मर्म कथा जानने जैसी है । श्रीमोटा ‘स्वयं’ चित्र में न रहकर ‘गुरु महाराज ने बदल देने क स्वीकर किया’ की बात बतलाई । परन्तु वे ‘गुरुमहाराज’ उनमें ‘स्वयं’ ही परमतत्त्व रूप हैं, ऐसी गूढ़ बात नहीं की । मैंने श्रीमोटा को पूछा था, ‘आपको आदेश देनेवाले गुरुमहाराज किस रूप में प्रगट हुए थे ?’



श्रीमोटा का उत्तर था, 'आकाश और तेज रूप शरीर था।' यह बात उस समय मुझे बिलकुल समझ नहीं आयी थी। आज समझ आती है। पाँच तत्त्वों में से दो तत्त्व आकाश तत्त्व और तेज तत्त्व हैं। उसमें अनुभवी को आकाश तत्त्व अग्रतम होता है। तेज तत्त्व से यह दर्शन रूप बनता है। हमारी सीमित और विषयानुसारी बुद्धि अधिक समझ या ग्रहण न कर सके इसलिए श्रीमोटा ने 'गुरुमहाराज' शब्द प्रयोजित किया। 'गुरुमहाराज' शब्द का मर्म तो आपश्रीने देहत्याग पूर्व लिखे पत्र में स्पष्ट किया है।

इस तरह श्रीमोटा ने 'गुरु' के आदेश से अपने अनुभव दशा के प्रयोग को एक नयी दिशा में व्यापक करने का संकल्प किया था। १९३९ से १९६० तक (विशेषकर १९५५ से १९६० मौनएकांत कमरों में बैठे श्रेयार्थी में प्रभुभावना जागृत करवायी जाती है।) अब ऐसी विकसित हुई दशा के दर्शन का प्रयोग प्रेरित हुआ था। मानव समुदाय के हृदय में विद्यमान उन्नत भाव और भावनाओं को जागृत कर सक्रिय करने का और व्यक्ति के तथा समूह के जीवन में रही गुणशक्ति को, विशाल मानवमात्र के लिए प्रगट करने का एक प्रभु-संकल्प प्रगट हुआ। अब व्यक्तिलक्षी कल्याण के अलावा सामूहिक कल्याण की दिशा खुली थी। इसलिए आपश्री ने 'लोक कल्याण के कार्य' प्रेरित किये। श्रीमोटा ने १९-७-१९७६ के दिन लिखे पत्र में 'लोक कल्याण के कार्य' ऐसे शब्द का प्रयुक्त किया है। यही उसका तात्पर्य है।

श्रीमोटा प्रेरित लोक कल्याण के कार्य अर्थात् मानवमात्र में रही प्रभुभावना को जागृत कर उसे कार्यान्वित करना।



२. समाज अर्थात् भगवान

श्रीमोटा आत्मानुभव के रूप में जीवमात्र में 'जीते' थे। ऐसे अनेक 'जीव' आपश्री के अनेक जन्मों के अनेक प्रकार के संबंधों के निमित्त थे। वे निमित्त अनेक प्रकार के थे, हैं और अभी भविष्य में प्रगट भी होंगे। उन सभी में रहे प्रभुभाव को जागृत कर सभी के जीवन उन्नत हों, ऐसा एक आध्यात्मिक प्रयोग आपश्री के द्वारा प्रेरित किये कार्यो के पीछे है। श्रीमोटा द्वारा प्रेरित किये समाजकल्याण—लोककल्याण के कार्यो के गर्भ में आध्यात्मिक रहस्य छिपा है। ऐसे गर्भित अध्यात्मभाव को सामाजिक स्तर पर लाने का कार्य तो कोई विरल वीर अनुभवी ही प्रेरित कर सकता है। श्रीमोटा ने अपने अनुभव के बाद के कार्य को इस तरह परिचित कराया है।

'जीवन अनुभव गीत' की एक गजल में आपश्री ने स्पष्ट लिखा है —

सभी में जो बसा प्रभु क्या गूढ़ छिपा,

छिपे प्रभु को प्रगट करने हृदय से जीते है।

श्रीमोटा 'सभी में' अदृश्य रूप में बसे प्रभु को अनुभव रूप में प्रगट करने के लिए सभी के हृदय में 'जी' रहे हैं। श्रीमोटा का यह कथन अत्यन्त मार्मिक है। 'जीवन' यह प्रभु का व्यक्त रूप है। 'जीवन' निरन्तर है, 'जीवन' अखण्ड है। हम जिस आयु मर्यादा में जीते हैं उस खण्ड का तो 'जिन्दगी' रूप में पहचानना चाहिए। श्रीमोटा का जीवनानुभव अमर्यादित है। आपश्री के अनुभव का विस्तार 'सभी' में रहा है। अतएव आपश्री ने उसे गजल में व्यक्त किया है।

■
'सभी के साथ हम जीते हैं सभी के साथ मिलते जुलते हैं
हमारे जीने का क्या नहि कोई हेतु जानते हैं !'

(‘जीवनअनुभवगीत’, पृ. ४३६)

श्रीमोटा का मिलने, जुलने और जीने का उद्देश्य ‘प्रभु को प्रगट करना’ है। यह उद्देश्य तुरन्त पता नहीं चलता। क्योंकि यह उद्देश्य गूढ़ और रहस्यमय है। तब भी सभी के लिए प्रतीतिकर होने से प्रमाणभूत बनता है। यही श्रीमोटा के ‘कार्य’ की विशेषता है। जो सूक्ष्म अनुभव हमारी प्रतीति में आने पर भी हमें अधिकतर तुरन्त नहीं समझ में आता और जब समझ में आता है, तब दिल में उनमें प्रगट हुए प्रभुरूप के प्रति आकर्षण और भाव जागृत होता है।

इस तरह ‘प्रभु को प्रगट करने का उद्देश्य रखकर लोककल्याण के कार्यों को प्रेरित करनेवाले श्रीमोटा मात्र सामाजिक उत्कर्ष करने तत्पर हुए समाज सुधारक साधु, महात्मा या संत’ रूप में पहचानने से दिल से पूरी तरह मूल्यांकन नहीं होता। श्रीमोटा का पूर्व जीवन केवल देशसेवा का कार्य क्षेत्र था। यह कार्य आपश्री ने स्वयं के जीवनविकास के हेतु की सजगता के साथ आचरण किया। इससे ऐसे सेवाकार्य की भूमिका उनकी अपनी साधना की दृष्टि से अलग ही थी। आपश्री ने रागद्वेषादि को निर्मूल करने के उद्देश्य से निजी साधना से फलित होती शक्तिओं को स्वयं को मिले कार्य में प्रतिष्ठित की थी। इससे यह कर्म उनके लिए मुक्ति का साधन बना है। उसके पश्चात् जब अद्वैत परमात्मा का अनुभव (१९३९) हुआ, उसके बाद उत्तरोत्तर विकसित, विलसित और विस्तारित होती अनुभवदशा के प्रभुप्रेरित प्रयोग होते रहे। आपश्री आध्यात्मिक जीवन के मात्र अनुभवी ही नहीं हैं, परन्तु आध्यात्मिक अनुभव को प्रयोग से प्रतिष्ठित कर, उसे विज्ञान का रूप देनेवाले



विरल आध्यात्म विज्ञानी हैं। केवल विज्ञान ही अपने अनुभव को अन्य जीव में सक्रान्त कर सकता है। आध्यात्मिक विज्ञान की यह एक अत्यन्त सूक्ष्म और गहन प्रक्रिया है। भौतिक या रसायन विज्ञान की तरह अध्यात्म विज्ञान के प्रयोगों का परिणाम अमुक ही समय में प्रत्यक्ष नहीं कराया जा सकता। परन्तु कालक्रम में जैसे-जैसे मानवसमाज की भूमिका परिपक्व होती जाती है वैसे-वैसे उसके परिणाम प्रत्यक्ष होते जाते हैं। श्रीमोटा प्रेरित 'लोककल्याण के कार्य' ये अध्यात्म विज्ञान के विज्ञानी का व्यापक और विस्तारदसा के अनुभव का एक अनोखा प्रयोग है।

'प्रभु सचराचर है', 'प्रभु तो सब में हैं', 'प्रभु तो एक ही है, मूर्तियाँ अलग हैं।' — ऐसी भावना हमारे समाज में संस्कार परम्परा से प्रसारित हुई है। परन्तु यह भावना केवल वाणी में ही बहा करती है। श्रीमोटा ने लोक कल्याण के काम के लिए कालबल को प्रमाणित किया। आपश्री बार-बार कहते कि, समयधर्म को पहचाने वह अनुभवी और काल के अनुरूप कर्म को प्रेरित करे वह अनुभवी। अनुभवी को जो कर्म स्फुरित होता है, वे संस्कारों के कारण स्फुरित नहीं होते, परन्तु समयधर्म में से साहजिक स्फुरणा होती है। इस अर्थ में आपश्री स्वयं से प्रेरित 'लोककल्याण' के कार्य को मौलिक गिनाते थे।

श्रीमोटा ने प्रमाणित किया कि इस काल में, समाज में, धर्म विद्यमान नहीं है। लोगों के मन-वाणी के भाव कर्म में अवतारित नहीं होते। लोक धर्म के विषय में केवल बात करते हैं। व्यक्ति तथा समाज के जीवन में त्याग एवं परमार्थ अग्रताक्रम हो तब धार्मिक जीवन के लक्षण परखे जाते हैं। इसलिए धार्मिक जीवन को जागृत करने के लिए आज के काल में मंदिर बनवाने या देवों की मूर्तियों की स्थापना करना, यह धर्म कार्य नहीं है। परन्तु व्यक्ति में निहित गुण

■
और भाव प्रगट हों और कार्य में परिणित हो आसपास में व्याप्त हों समग्रता हो स्पर्श करें, ऐसे कार्यो द्वारा धर्मभावना जागृत होती है । इससे श्रीमोटा के पास से एक विधान प्रगट हुआ ।

‘मुझे समाज को जागृत करना है ।’

१९३९ पश्चात् ‘मैं सर्वत्र विद्यमान हूँ ।’ यह अनुभववाणी प्रगट हुई थी । उसमें सर्वत्र जो ‘है’ ही ऐसे चेतन का ‘होनेपन’ के अनुभव का डंका नाध है । ऐसी ही झंकार १९३१ पश्चात् ‘**मुझे समाज को समर्थ बनाना है ।**’ इस कथन में से सुनाई दिया । और कुछ ही समय में समाज में ये शब्द व्याप्त हो गये । श्रीमोटा के इन शब्दों ने लोकसमुदाय पर अद्भुत असर की । आपश्री द्वारा प्रेरित कार्यो के लिए अलग-अलग क्षेत्र में से, अलग-अलग दिशा में से लोगों को श्रीमोटा ने सूचित किया, वैसा हुआ ।

‘मुझे समाज को समर्थ बनाना है ।’ इन शब्दों के पीछे का नाद प्रभुप्रेम के अनुभवी परमपुरुष के हृदय में से निकला था और वह नाद जिनके हृदय तक पहुँचा, वहाँ से प्रभुप्रेम के प्रति अकल्पनीय प्रकार का आकर्षण पैदा हुआ और श्रीमोटा प्रेरित कार्य में अकल्पनीय भावना के द्वारा जुड़े ।

श्रीमोटा का यह कथन नये युग के आगमन के संकेत देता है । पृथ्वी पर प्रभु के अवतरण आगमन की तैयारी करवानेवाला आध्यात्मिक तेज पुंज था । उन शब्दों में निहित शंखनाद – सिंहनाद बहुतों के हृदय को झकझोर रहा था । श्रीमोटा का प्रत्येक शब्द मार्मिक है । उसका सदा आध्यात्मिक ही अर्थ होता है । ‘भगवान’, ‘प्रभु’, ‘आत्मा-परमात्मा’ या ‘चेतन’ के अलावा अन्य कोई भी भूमिका आपश्री की वाणी में नहीं है । यह एक ठोस यथार्थ है । इसीलिए यह वाक्य भी इतना ही गर्भित रहस्यमय आध्यात्मिक शक्ति रखता है ।



समाज की श्रीभगवान विषयक सामान्य समझ को श्रीमोटा ने आलोकित किया है, प्रकाशित किया है। श्रीभगवान को रूप नहीं है और वह सचर एवं अचर सभी में हैं। तो फिर वह हम में और हमारे समाज में भी है। अतः समाज को 'भगवान' मानकर उसकी सेवा करना यह युगधर्म है। यदि मंदिर में स्थापित मूर्ति में भगवान की भावना की धारणा हो सकती हो तो जीवन्त मानवमूर्ति में छिपे भगवान के प्रति ऐसी भावना क्यों नहीं जागृत कर सकते हैं? इसलिए आपश्रीने कहा था, 'हम उस भगवान को मानते हों, प्रेमभक्ति से, ज्ञानपूर्वक मानते हों, तो उनकी सेवा तो करनी ही चाहिए। इस समाज की सेवा भगवान की सेवा है। आज के ऐसे वातावरण में 'समाज' शब्द प्रचलित है, इसलिए 'समाज' शब्द का उपयोग कर रहा हूँ। बाकी किसी काल में मेरे दिमाग में समाज नहीं है। मेरे दिमाग में तो भगवान ही बिराजमान हैं। मैं अपने भगवान की ही सेवा कर रहा हूँ। मेरे मन से यह सौ प्रतिशत सच्चाई है।'

(दीक्षा महोत्सव के समय दिये प्रवचन में से दिनांक ४-२-१९७२, 'श्रीमोटावाणी-१' पृ. १५-१६)

इससे सिद्ध होता है कि श्रीमोटा प्रेरित लोककल्याण के कार्यों को मात्र सामाजिक उत्कर्ष या उत्थान की प्रवृत्ति के रूप में समझा करें तो इन कार्यों का मूल्यांकन अधूरा रहेगा। श्रीमोटा को तो समग्रता में छिपे भगवान को आगे लाना था। इसका उद्देश्य यह था कि वे भगवान अपनी गुणशक्ति रूप में व्यक्त होकर भावना की भूमिका से दर्शनीय बने रहे। आपश्री के प्रेरित कार्यों द्वारा प्रभुशक्ति की ऐसी झाँकी सतत होती रही है।

श्रीमोटा ने गुण और भाव को भगवान के व्यक्त लक्षण के रूप में प्रमाणित किया है। ऐसे गुणभाव का अविच्छिन्न रूप



व्यक्ति में से अर्थात् समाज में से व्यवहार में अवतरित हो, इसके लिए जो भी परमार्थ, त्याग किया जाता है वह धर्मकार्य है। ऐसे गुण-भाव जहाँ व्यक्त हुए हों उस ओर हमारी दृष्टि जाय यही प्रभु भक्ति के दर्शन हैं और हमारे द्वारा उन गुण-भावों की कदर हो, यह प्रभु की भक्ति है।

वर्तमान युग में ज्ञानविज्ञान की अनेक शाखाओं के विकास के साधन, वैज्ञानिक आविष्कार के कारण सुख के अनेक साधन होने पर भी, हमारे समाज में अंधश्रद्धा, वहम, आडम्बर, धर्म-अध्यात्म के विषय में अपार भ्रांतियाँ हैं। ऐसे बाह्य जीवन के प्रवाह में श्रीमोटा ने क्वचित जहर फैलाते हुए रागद्वेष रूपी विषधर पर काबू पाने की सूक्ष्म विधि श्रीमोटाने निर्मित की है और हमारे जीवन में रहे प्रभु को प्रगट किये है। हमारे समक्ष मानवमूर्ति के रूप में विराजमान श्रीमोटा के ऐसे विरल कार्य के मर्म को समझते हुए ऐसा बोल देते हैं कि 'हम अपराधी कुछ न समजे, न पहचान पाये भगवान को!'



३. श्रीमोटा का महायज्ञ (भूमिका)

श्रीमोटा साधना के दौरान प्रयोगशील थे । साधना करते-करते जो भी शक्तियाँ प्रगट होतीं, उनका व्यवहार में प्रत्यक्ष अनुभव होने पर भी प्रतिष्ठा का प्रमाण मिलता । रात्रि को स्मशान में की साधना का भाव दिन के दौरान कार्य करते हुए टिका रहता था । इसप्रकार के प्रयोग द्वारा अनुभव करते थे । उसी तरह अभय, नम्रता, मौन, एकान्त, संयम आदि कितने परिपक्व हुए हैं, उनका भी प्रयोग तक, परिस्थिति और संयोग मिलते ही कर लेते । इसतरह साधना के भाव का व्यवहार में अवतरण होता था ।

आपश्री को परमपद का अनुभव हुआ था, उसके पश्चात तो आपको कुछ भी करने जैसा न था । मात्र निमित्त प्राप्त होते ही उनकी सक्रियता व्यक्त होती थी । मुक्ति का अनुभव करनेवाले अनेक महात्मा ऐसा मानते थे कि अनुभव का फिर प्रयोग कैसा ? जब कि श्रीमोटा का दर्शन अनोखा ही था । वे आध्यात्मिक विज्ञान के विज्ञानी थे । इससे आध्यात्मिक जीवन की कक्षा को भी प्रयोगशील बनवाते थे । शरीर पर अत्यन्त पीड़ाकारी रोग होने पर भी सतत कार्यरत रहते, प्रवास करते और साथ-साथ 'जीवन के अनुभव' को व्यक्त करते भजनो को लिखते, लिखवाते । यह भी उनका प्रयोग था । श्रीमोटा कहते हैं, यह सब आध्यात्मिक अनुभव का प्रयोग था । श्रीमोटा कहते हैं, आध्यात्मिक अनुभव का प्रयोग अनुभवी 'स्वयं' में करता है । देहातीत होने का अनुभव हुआ किन्तु उसका प्रमाण क्या ? आनंद अंतर के अनुभव में तो होता ही है, परन्तु देह की विपरीत अवस्था में भी उसी आनंद की अभिव्यक्ति के साथ मौलिक और उच्च प्रकार के



सर्जन होते जाँय ये हैं प्रयोग । यह यथार्थ 'जीवता नर सेवीए' में आपश्रीने समझाया है ।

श्रीमोटा के अनुभव की खास विशेषता यह है कि उनकी अवस्था को दिव्यमुक्ति, जीवनमुक्ति या विदेहमुक्ति ऐसे नाम देने से अनुभव की हमारी समझ की भी मर्यादा आ जाती है । इससे आपश्री कहते हैं, "मेरा तो केवल 'अनुभव' के साथ सम्बन्ध है । आप उसे कोई भी नाम दो । यदि 'अनुभव' हे तौ वह स्थान, संयोग, काल से पर है । वास्तव में 'यह' नहीं तो अनुभवी कालातीत हुआ है । जैसे गुणातीत है, भावातीत है, वैसे ही कालातीत भी है ।" श्रीमोटा का अनुभव 'कालातीत' है यही प्रमुख विशेषता है । इससे ऐसे अनुभव की वाणी का उद्देश्य या मर्म तत्काल हमें न समझ में आए यह भी स्वाभाविक है । क्योंकि हम तो स्थान-काल में बंधे होने से ऐसे अनुभवी पुरुष की कालातीत वाणी को नहीं पा सकते हैं । तब भी श्रीमोटा ने इस संबंध में कुछ स्पष्टता की है । इससे आपश्री के प्रेरित 'काम' के पीछे का उद्देश्य, मर्म हम पा सकते हैं ।

कालातीत अवस्था का अनुभवी 'मानव यदि शायद बोलता हो तो वह मात्र इस काल तक मर्यादित है ऐसा नहीं है, इस विषय पर अधिक गहराई में सोचना चाहिए ।'—ऐसा आपश्री कहते हैं । तात्पर्य कि श्रीमोटा की बात को—वाणी को—मात्र इतने समय के लिए है, ऐसा न मानें । उसके अत्यन्त दूरगामी परिणाम प्रगट होंगे ही । अतः उनके कथन को समझने के लिए 'बहुत गहराई से विचार करना चाहिए ।'

श्रीमोटा भले ही जैसा भी बोलें तब भी उसके पीछे रहस्य होता है । इस बात को स्पष्ट करते मेरे सामने उंगुली का संकेत कर आपश्रीने



ने कहा था, 'रमेश भट्ट को मैंने मजाक में दो-चार गालियाँ दे दी हों तो भी उसके पीछे रहस्य है। यह किसी के ख्याल में नहीं आएगा। उसे ऐसा लगेगा कि क्यों ऐसा कहा?' उनका कुछ भी बोलना रहस्यमय है। भेदमय है। 'भेदमय' अर्थात् एक दूसरे से अलग करने की हद का नहीं, किन्तु उसमें गहरा मर्म रहा है, ऐसा किसी को ध्यान में आये ऐसा नहीं है।

'फिर उसका प्रत्येक कर्म उद्देश्यपूर्ण है। किन्तु वह उद्देश्य सोचता नहीं, उसमें उद्देश्य सोचा ही नहीं है। तब भी उसमें उद्देश्य है। उसका एक ही उद्देश्य है। अनुभवी का अन्य कोई उद्देश्य नहीं है। सर्व कोई को जो कोई भी मिले उसे इस भगवान का स्पर्श हो यही एकमात्र उद्देश्य है। इतना ही नहीं अनुभवी में अनंत धीरज होती है, यह बात भी निश्चित है। अभी सिद्ध हो जाय ऐसा कभी उसके मन में नहीं आता है। उसे इसका ज्ञान है कि आज नहीं तो कल भगवान का ज्ञान उसके अंतर में अंकुरित होगा।'

(‘जीवता नर सेवीए’, पृ. ११५-११६)

इससे हम समझ पाएँगे कि श्रीमोटा का लोक कल्याण के कार्यों के पीछे 'सर्व किसी को' जो कोई भी मिले उसे भगवान का स्पर्श हो ऐसा उद्देश्य है। इसके अलावा अपनी अनुभवी कक्षा 'कालातीत' होने से उसका परिणाम कभी तो प्राप्त होगा ही। श्रीमोटा के द्वारा प्रेरित किये लोककल्याण के कार्यों का परिणाम तथा उन कार्यों के लिए उनमें जो कोई भी जुड़े हैं उन सभी को भागवती चेतना का स्पर्शानुभव का परिणाम किसी भी तरह आये बिना नहीं रहेगा।

एक प्रश्न ऐसा भी होता है कि श्रीमोटा ने ऐसी प्रवृत्तियों का आरंभ १९६२ से क्यों किया? यह प्रश्न प्रस्तुत नहीं है क्योंकि यह उनके 'अनुभव' के आधार पर है। तथापि आपश्री सार्वजनिक रूप से



कहते थे कि जो 'निमित्त' 'मुझे' मिलनेवाले हैं, ये सभी मुझे मेरे शरीर के अस्तित्व रहते शीघ्र से मिल सकें इसलिए काल संक्षिप्त करने के लिए यह कार्य है। श्रीमोटा प्रेरित लोककल्याण के कार्यों के पीछे का यह उद्देश्य गूढ़ होने से केवल उसका उल्लेख ही पर्याप्त है।

अब श्रीमोटा द्वारा प्रेरित योजनाएँ तथा उन्हें सिद्ध करने हेतु सम्मिलित हुए व्यक्तियों के जीवन में भागवती स्पर्श हो इसके लिए श्रीमोटा का महायज्ञ किस तरह आयोजित हुआ है उसे देखें।

(दिनांक २०-११-९५)



४. महायज्ञ की धर्मज्वाला

श्रीमोटा द्वारा आयोजित यह महायज्ञ अपूर्व और अनोखा ज्ञानयज्ञ, कर्मयज्ञ और भक्तियज्ञ था। इस यज्ञ का कुण्ड काल के अनुरूप था और कालबल को सानुकूल करने के लिए व्यापक था। 'स्वयं' यज्ञ के पुरोहितपद पर थे और यज्ञ में हिस्सेदार बननेवाले 'जीव' मात्र उनके यजमान थे। इस तरह विशाल मानसमाज उनका यजमान था।

आपश्री ने इस यज्ञकुण्ड में धर्मज्वाला प्रज्वलित की थी। इस धर्मज्वाला को प्रज्वलित रखने तथा उसकी अग्निशिखाओं को सर्वोच्च शिखर ले जाने के लिए मानवसमाज को आहुतियाँ अर्पित करनी थीं।

श्रीमोटा ने काल के लक्षण को लक्ष में रखकर इस महायज्ञ का आयोजन किया। त्याग और परमार्थ यह व्यक्ति तथा समूह जीवन में यानी कि जब तक व्यवहार में न दिखाई दे तब तक धर्म प्रगट नहीं हो सकता। ऐसे त्याग और परमार्थ को तो श्रीमोटा ने अपने जीवन में प्रत्येक क्षण जब-जब अवसर मिला तब आचरित किये हैं। यह सब उनके जीवन में बचपन से ही देखने को मिलता है। स्वयं गरीब होने से कोई पहनने के लिए कपड़ा दे तो उसे प्रेम से स्वीकार करते और अपने से अधिक आवश्यकतावाले को उतने ही प्रेम से दे देते। स्वयं को पढ़ाने के लिए खर्च देनेवालों का एक पैसा भी अधिक खर्च न हो ऐसे ऊँचे आदर्श स्वयं रखते। इस प्रकार के असंख्य प्रसंगों का उल्लेख किया जा सकता है। गरीब होने पर भी स्वयं कभी भी धन का संग्रह नहीं किया। किन्तु जो कुछ भी मिला वह सभी उन्होंने देश के चरणों में हरिजन सेवक संघ को अर्पण कर दिया था। यह तो उनके साधना काल दौरान त्याग और परमार्थ की झलकें हुईं। स्वयं के जीवन की



ऐसी भूमिका से ये गुण समाज में प्रेरित हों इसके लिए बात करने का आपश्री को अधिकार था ।

श्रीमोटा परमात्मा की अनुभवदशा प्राप्त करने के पश्चात् आपश्री ने हरिःॐ आश्रमों की स्थापना की । उसमें मौनएकान्त कक्षों में व्यक्ति के जीवन में रही प्रभुभावना जागृत करने का विशिष्ट और अद्वितीय प्रयोग किया । इसके साथ-साथ १९६१ में 'मुझे समाज को समर्थ बनाना है ।' का एक नाद प्रगट हुआ । मानवसमूह में छिपी प्रभुभावना को प्रगट करने हेतु आपश्री से एक अनोखा महायज्ञ प्रेरित हुआ । इस कार्य का आरंभ स्वयं के ही प्रत्यक्ष आचरण द्वारा किया । १९६० तक आध्यात्मिक मार्गदर्शन देती पुस्तकों के विक्रय से जो आय हुई, वह सारी राशि पचास हजार रुपए-१९६१ में आपश्री ने गुजराती साहित्य परिषद को दान में दिये । इसमें से मौलिक भक्तिप्रधान साहित्यसर्जन के लिए उसके लेख को सुवर्णचन्द्रक देने के लिए, भावनात्मक साहित्य सर्जन करती स्त्री लेखिका को पारितोषिक देने के लिए तथा बालकों में हिंमत, साहस, प्रामाणिकता, सहिष्णुता, आदर भाव आदि आये ऐसे चरित्रों के प्रकाशन के लिए यह राशि अर्पण की । स्वयं को 'निजी' गिनी जाय ऐसी यह पूरी की पूरी राशि समाज के चरणों में समर्पित की और व्यवहारिक जीवन में ऐसे आचरण के आदर्श की भूमिका-आसन पर बैठकर महायज्ञ के लिए समाज को टेर लगायी ।

आपश्री के अनुसार वर्तमान समाजजीवन में असमानता आ गयी है क्योंकि परिग्रह-संग्रहवृत्ति और स्वार्थ ही मुख्य हैं । यदि समाजजीवन में संतुलन लाना हो तो उसके सामने के पलड़े में अधिक वजन रखना चाहिए । परिग्रह के सामने त्याग और स्वार्थ के सामने



परमार्थ हो तो समाज में समता—संतुलन आयेगा। आज के समय में लक्ष्मी का परिग्रह होता जा रहा है और उसका उपयोग केवल स्वार्थ के लिए ही हो रहा है। इससे श्रीमोटा के महायज्ञ के लिए नजर में चढ़ें ऐसी आहुति के लिए द्रव्य—यही पैसा—था। श्रीमोटा ने परिस्थिति और काल—संयोग से वृद्धि कर रही लक्ष्मी का आदर किया है। यह भी एक महत्त्व की बात है। आजकल साधु महात्मा प्रत्यक्ष रूप में लक्ष्मी की अवगणना करते हैं और उसे बंधन का कारण समझाते हैं। आधुनिक काल ऐसे उपदेश के लिए उचित नहीं है। श्रीमोटा लक्ष्मी को शक्तिरूप बतलाते हैं। फिर वे भगवान की शक्ति होने से भगवान के कार्य में खर्च हो—यानी कि जीवन में रहे भागवती भावों को जागृत करने के लिए खर्च हो तो ही उसका योग्य उपयोग हो तभी सच्चे अर्थ में लक्ष्मी शक्तिरूप में दिखाई देती है, ऐसी लक्ष्मी के उपयोग से व्यक्ति का एवं समाज का जीवन उज्ज्वल बनता है।

लक्ष्मी 'माँ' है। उससे हमारे जीवन के लिए बहुत सारा सुलभ होता है। बहुत सारा उपलब्ध है। हमारे जीवन को वह समृद्धि, सुख, शांति, आनंद और निश्चिंतता देती है। यदि इस मातृभाव से लक्ष्मी की प्राप्ति, वृद्धि और उपयोग होता तो व्यक्ति और समाज जीवन का विकास होने में अधिक सानुकूलता रहेगी।

महायोगी श्रीअरविन्द ने कहा है, 'मातृरूप लक्ष्मी आज असुरों के बल नीचे दबी है, इससे विश्व में अनेक अनर्थ हो रहे हैं। ऐसे असुरों के पंजों से लक्ष्मी को मुक्त करके उसे भागवती शक्ति के प्रागट्य के लिए उपयोग में लाया जाय यह आवश्यक है।' श्रीमोटा ने यही बात कुछ अलग भाषा में समझायी है। किसी भी व्यक्ति का लक्ष्मी पर का स्वामित्वभाव होना बड़ा अनर्थ है। लक्ष्मी की प्राप्ति



और वृद्धि स्थान, काल, और संयोग के आधीन है। ये तीनों ही बातें प्रभु के आविर्भाव प्रगट होने के केन्द्र हैं। लक्ष्मी उसके द्वारा वृद्धि पाती है। लक्ष्मी के उपार्जन के लिए हमारे प्रयत्नों के पीछे की शक्ति, दृष्टि, चतुराई इत्यादि चेतनत्व भी प्रभु के ही हैं। ये हमारे स्वतंत्र स्वामित्व के नहीं हैं।

लक्ष्मी की वृद्धि मात्र बुद्धिशक्ति के ही आधीन नहीं है। ऐसा होता तो सभी बुद्धिशाली मनुष्य धनवान होते। इससे सिद्ध होता है कि लक्ष्मी यह प्रभु की शक्ति है। उस पर स्वामित्वभाव रखना और लक्ष्मी को स्थगित कर देना यह तो परमशक्ति पर का दमन है। ऐसी वृत्ति और भाव का परिणाम यथासमय पर घातक, भयंकर और विनाशकारी होना पूर्ण संभव है। लक्ष्मी की तो 'माँ' के भाव से उपासना करनी चाहिए। श्रीमोटा कहते, 'माँ की गोदी में सिर रखकर हम निश्चिंत हो सकते हैं, हमारे मन-हृदय को पवित्र बना सकते हैं, परन्तु उसे 'स्वयं' की मानकर बाँहों में नहीं भरा जा सकता।' श्रीमोटा का यह वचन बहुत ही मार्मिक है। अपनी माँ के साथ का ऐसा स्वामित्व भाववाला व्यवहार कैसे परिणाम ला सकता है, यह समझा जा सकता है। श्रीमोटा ने लक्ष्मी के प्रति भावना को स्पष्ट समझाकर, लक्ष्मी के उपयोग के लिए हमारी आँख खोल दी हैं।

आधुनिक काल में मानव मात्र लक्ष्मी प्राप्त करने, उसे इकट्ठा करके अपनी महिमा बढ़ाने और इसतरह समाज के दूसरे वर्ग के प्रति तुच्छ भाव, तिरस्कार से देखने लगा है। समाज के सभी प्रकार के व्यवहारों का केन्द्र भी पैसा ही रहा है। पैसा ही मानो सभी गुणों का केन्द्र बना है। सब कोई का जीव 'पैसे' के पीछे है और 'पैसा' ऊपर है। ऐसे 'जीवभाव' को प्रभुभाव के प्रति मोड़ने का एक विशिष्ट



आध्यात्मिक प्रयोग श्रीमोटा ने किया। सभी इसे समझकर स्वीकार कर सकते हैं ऐसा यह प्रयोग है। चेतन अथवा प्रभु विस्तार और विविधता में व्यक्त है। हम पैसा कमाते हैं, यह हमारे अकेले मात्र एकांगी शक्ति से नहीं कमाते हैं, परन्तु स्पष्ट रूप से समाज के पास से कमाते हैं। इससे हमारी कमायी में समाज का हिस्सा है। ऐसी हिस्सेदारी—भागीदारी हम भूल गये हैं। यह अप्रामाणिकता है। 'समाज' यानी 'भगवान' समाज के विशाल वर्ग में जो भागवती शक्ति छिपी है, उसे प्रगट करने के लिए भगवान की शक्ति—लक्ष्मी का उपयोग हो, उस ओर लक्ष्मीसम्पन्न सभी का ध्यान जाना चाहिए। समाज से प्राप्त धन से समाज के लिए उसका हिस्सा न दें तो चोरी गिनी जाएगी। इससे धन पर के स्वामित्व के मिथ्याभाव को शिथिल कर के, जिसका है उसे ही हम देते हैं इस भाव से देना यह सच्चा त्याग है।

'हम त्याग करते हैं और दूसरों पर उपकार करते हैं' इस भाव से हमारे में रही भागवती चेतना जागती नहीं है। इसलिए जिसके पास से हमने प्राप्त किया है, उसमें से उसका हिस्सा देकर हम ऋण से मुक्त होते हैं, ऐसे भाव से त्याग का सच्चा लक्षण पैदा हो सकता है। श्रीमोटा द्वारा प्रेरित 'लोककल्याण' की भावना का मूल ऐसे भाव में रहा है। त्याग यह धर्म का लक्षण है। इससे त्याग की भावना हमें अपनी नजरों के समक्ष रखनी है। पैसों के दीखते दान या त्याग द्वारा ऐसे महायज्ञ में जो आहुति देनी है वह लक्ष्मी पर के स्वामित्व भाव की आहुति है। साथ ही साथ समाज का ऋण चुकाकर 'हमने कुछ भी विशेष नहीं किया' ऐसा विनम्र भाव लाना है। परिणाम 'कुछ भी किये' का अहंकार जागृत नहीं होगा।



श्रीमोटा द्वारा प्रेरित महायज्ञ की धर्म-ज्वाला का दूसरा प्रगट लक्षण 'परमार्थ' है। हम सभी स्वार्थ को अच्छी तरह पहचानते हैं। किन्तु परमार्थ को नहीं पहचान पाते हैं। क्योंकि हम पूरी तरह स्वार्थ में ही डूबे हैं। हम अपने अंगों के प्रति भी स्वार्थ से ही व्यवहार करते हैं। स्वार्थ छूटने पर भी नहीं छूटता। इससे श्रीमोटा ने स्वार्थ को कम करने के लिए अपने जीवन व्यवहार में 'परमार्थ' किस तरह आये उसका कुशल योग बतलाया। 'परम' यानी उच्च आदर्श के लिए हम से जो कुछ भी होता है, वह परमार्थ है। हमारी निजी आर्थिक संपत्ति का उपयोग 'समाज' को जागृत करने के लिए—एक इंच जितना भी ऊपर उठने के लिए हो वह परमार्थ है। **श्रीमोटा कहते, 'समाज की समग्रता को स्पर्श करे ऐसा दान होना चाहिए।' समाज की 'समग्रता' में व्यापकता है, विस्तार है। उसमें एकांगीपन नहीं है। इससे समग्रता को स्पर्श करती धर्मक्रिया में सच्चा 'परमार्थ' है। इस प्रकार के लक्ष्य को रखकर किया गया दान ही परमार्थ है।**

इस तरह श्रीमोटा द्वारा प्रेरित महायज्ञ की धर्मज्वाला के हमें दर्शन होते हैं। त्याग और परमार्थ अग्रिमक्रम हों तभी धर्म प्रगट हुआ कहलाएगा। ऐसा श्रीमोटा ने बार-बार कहा है। इससे वे ऐसा भी कहते कि आज हमारे समाज में कहीं धर्म नहीं है, यह बिलकुल यथार्थ है।



५. महायज्ञ के पुरोहित का संकल्पघोष

श्रीमोटा ने जीवमात्र के आकर्षणबिन्दु को—मोहकेन्द्र को अपने हृदय में प्रगट हुए प्रभु प्रेम की शक्ति से अपनी ओर मोड़ा । श्रीमोटा द्वारा प्रेरित हुए ऐसे सार्वजनिक महायज्ञ के पुरोहित के रूप में ऐसा अलौकिक कार्य किया । किसी के पास से पैसे प्राप्त कर दान करना यह भी एक प्रकार का सूक्ष्म बंधन गिना जाएगा । इसका स्पष्टीकरण हेतु हुए श्रीमोटा ने ऐसा घोषित किया, “मेरे गुरुमहाराज ने कहा कि—तुम्हें देनेवालों को बदला ‘मैं’ संभाल लूँगा ।” श्रीमोटा के इस विधान का हार्द यह है कि प्रभुरूप में प्रकट हुए श्रीमोटा को अर्पित हुए का बदला प्रभु स्वयं देंगे ऐसा वचन है ।

ऐसे महायज्ञ के पुरोहित के रूप में श्रीमोटा स्वयं किस लाक्षणिकता से व्यक्त होते हैं, यह समझने जैसा है । आपश्री की यजमानों के प्रति कैसी घोषणा है ! उन्होंने ने सामने चलकर किसी के दरवाजे पर जाकर ‘अनुदान’ नहीं लिया । जो निमित्त आ मिले उनके पास से सामने से कहकर निमंत्रण माँगा, ‘मुझे तुम्हारे वहाँ रोटी खाने बुलाओ ।’ और साथ में कहा, ‘मैंने बीस वर्ष तक लगातार देशसेवा की है । इसलिए समाज मुझे रोटी खिलाता है यह तो मेरा पेन्शन है ।’ श्रीमोटा की इस घोषणा में पुरोहित के अधिकार की स्पष्टता है । इसके साथ ही ‘लोगों’ को अपना कर्तव्य अदा करने के लिए जाने का यह एक तरीका है । श्रीमोटा ‘निमंत्रण मिले बिना’ नहीं जा सकते ! क्योंकि आपश्री की एक भी क्रिया में कर्तापन कहीं भी प्रगट नहीं होता । आपश्री के निमित्त को ‘तत्परता’ की यह एक अनोखी पद्धति है । निमित्त परिचालित करे तभी



‘स्वयं’ परिचालित होना है। इसीलिए आपश्री बहुत बार बाद में कहते, ‘मैं तुम्हारे यहाँ चावल (निमंत्रण) रखने नहीं आया अर्थात् मैं तुम्हें मेरे पास बुलाने नहीं आया था।’ अर्थात् आपश्री ने हम पर अपना ‘होने का पन’ नहीं लादा है। किन्तु हमने सामने चलकर आपश्री को आमंत्रित किया है। ऐसे यथार्थ ‘ब्रह्मन्’ ‘परब्रह्मरूप’, ‘ब्राह्मण’ हमारे यहाँ हमने आमंत्रित किया है, पधारकर भोजन लें उस सद्भाग्य को व्यक्त करने के लिए आपश्री ने दूसरी घोषणा यह की थी कि, ‘मुझे दक्षिणा दें।’

उन्होंने ने ‘भिक्षान्न’ या ‘दान’ नहीं माँगा; ‘आमंत्रण’ और ‘दक्षिणा’ चाही है। ‘दक्षिणा’ विशिष्ट व्यक्ति रूप को दिये दान के लिए प्रयुक्त किये जानेवाला शब्द है। ‘दक्षिणा’ जिसे दी जाती है, उसमें दक्षिणा लेनेवाले की ओर गहरा आदरभाव, पूज्यभाव और प्रेमभाव होता है। इससे आपश्री ने ‘दक्षिणा’ माँगी थी।

दक्षिणा में रूपए माँगे। इसके लिए भी आपश्री ने दो कारण बतलाये हैं। (१) ‘पैसे तुम्हारे बाप के नहीं है।’ तात्पर्य कि पैसा भगवान की शक्ति है। भगवान को हमने परमपिता के रूप में हृदयपूर्वक स्थापित नहीं किया है। इस अर्थ में वे किसी के भी स्वामित्व के नहीं है। और (२) पैसे हमेशा उपयोग में आते रहते हैं, वह फिरते रहते हैं, यह उसका लक्षण है। लक्ष्मी की गति तीन प्रकार से होती है। (१) दान (२) भोग और (३) नाश। इससे पैसे दान में खर्च हों तो उसकी उत्तम गति है। श्रीमोटा ने पैसों से सुख-सुविधा भोगने को कभी मना नहीं किया। आपश्री कहते, ‘लक्ष्मी से तुम सुख, सरलता और शान्ति प्राप्त कर उसका उपयोग प्रभुर्चितवन के लिए करो, यही पैसे खर्च करने का सही तरीका है।’



किन्तु केवल वैभव-विलास के गंदे प्रदर्शन में दुरुपयोग होती लक्ष्मी अंत में दुःख और विषाद देनेवाली ही बनती है। इससे ज्ञानपूर्वक सही मात्रा में भोग होने के साथ विशेष तो उसका समष्टि के लिए उपयोग हो यही लक्ष्मी की दूसरे प्रकार की गति है। इतना न हो तो फिर लक्ष्मी संग्रह करनेवालों का नाश करके चली जाती है। ऐसी लक्ष्मी कालिका-चंडीरूप में कार्य करती है।

श्रीमोटा ने काल लक्षण को प्रमाणभूत बतलाकर बतलाया है, 'लक्ष्मी कलम की क्रोड़ में चली जाएगी।' इस सच्चाई का हम अनेक रूप में सिद्ध होते हुए अनुभव कर सकते हैं। विभिन्न प्रकार के सरकारी करों द्वारा लक्ष्मी खिंच रही है। दूसरी तरफ बेकाबू स्फीति के कारण रुपयों का मूल्य गिरता जा रहा है। इस अर्थ में भी लक्ष्मी जाने लगी है। लक्ष्मी की-धन की ऐसी गति शक्ति प्रेरित करनेवाली नहीं है। इससे हम सभी रुपयों की लहरों के बीच भी अशांति, भय, अनिद्रा, तनाव, क्लेश, इर्ष्या द्वेष और जान लेनेवाली बीमारियों की जकड़ में आ गये हैं। सोने के लिए आरामदायक साधन होने पर भी नींद के लिए दवा लेनी पड़ती है। अद्यतन सुविधापूर्ण गाड़ी में उसके मालिक को उठाकर बिठाना पड़े ऐसे भी उदाहरण हैं। स्वयं के घर की रसोई में - अनेक भाँति के भोजन पकने पर भी, मूँग का पानी और रोटी के सिवा कुछ भी खाया न जा सकता हो ! ऐसी स्थिति में जीनेवाले को अपने पास रही लक्ष्मी का उनके द्वारा किया गया उपभोग तथा उसका परिणाम समझना चाहिए।

लक्ष्मी द्वारा उत्पन्न हुई ऐसी दुर्गति में से उबरने के संकेत 'लोककल्याण' हेतु स्वयं प्रज्वलित किये इस महायज्ञ के पुरोहित ने हमें दिये हैं।



श्रीमोटा द्वारा प्रज्वलित इस 'महायज्ञ' में प्रगट हुई आहुति का दिखाई देनेवाला 'द्रव्य' पैसा है। परन्तु उसके द्वारा सूक्ष्म प्रकार की आध्यात्मिक प्रयोगात्मक क्रिया सिद्ध हो रही है। पैसों के प्रति हमारा मोह आपश्री ने पहचानाया। श्रीमोटा ने 'मोह' को समझाते हुए पुस्तक लिखी है। उन्होंने बतलाया कि हमारा मन, बुद्धि, चित्त जिसमें चिपके रहते हैं, यह मोह है। उसमें ही हमारे प्राण वेगवान बनते हैं और पैसों की प्राप्ति से हमारा अहंकार फूला नहीं समाता ! श्रीमोटा जब हमसे पैसे माँगते तब पैसों के प्रति हमारी दृष्टि, वृत्ति और भाव कैसे जागृत होते थे, इसे हम जानते हैं। श्रीमोटा ने ऐसे 'द्रव्य' की आहुति द्वारा आंतरिक मोह की समर्पण विधि करवाई है।

दूसरी तरफ इस महायज्ञ में हमारे द्वारा दी गई आहुति द्वारा सूक्ष्म आध्यात्मिक संस्कार हमारे चित्त में प्रवेश करते हैं। श्रीमोटा जब दक्षिणा माँगते हैं और हमारे द्वारा जब दिया जाता है—इस प्रक्रिया में 'अनुभवी पुरुष' का आज्ञापालन हमारे द्वारा अज्ञात रूप में होता है। ऐसे आज्ञापालन के कारण हम कृपापात्र बनते हैं। दूसरा हम दक्षिणा में पैसे देते हैं। इससे हमारा 'जीव' पैसों में होने से हमारा 'जीव' अपने आप उस पुरोहित में आ जाता है। मोटा का स्मरण अपने आप रहा करता है। फिर, दक्षिणा माँगने की आपश्री की लाक्षणिकता से वे विशेष से विशेष हमारे मन हृदय में याद आया करते हैं। ऐसे स्मरण के परिणाम स्वरूप हमारे अंतःकरण में आपश्री में जो 'चेतन' प्रगट हुआ है, उस चेतन के संस्कार हमारे चित्त में गहरे उतरते हैं। इस सूक्ष्म प्रक्रिया के प्रति हम सभान नहीं होते, इससे इन संस्कारों के कार्य की हमें समझ नहीं आती। परन्तु



नियमानुसार संस्कार जागृत होते ही अंतःकरणों की गति चेतन के प्रति ही होने की है, यह निश्चित है। इस प्रकार श्रीमोटा द्वारा प्रेरित किये इस महायज्ञ द्वारा हमारे में कभी तो ईश्वराभिमुखता, प्रभुपरायणता (जो संज्ञा दे वह) सिद्ध होनेवाली है। यह आध्यात्मिक विज्ञान का अतिसूक्ष्म यथार्थ है।

हम सभी अनुभव करते हैं कि हमारे अंतःकरण पैसों में कैसे चिपके हुए हैं। इसके कारण कुटुम्ब के गहरे स्नेह सम्बन्ध भी बिगड़ जाते हैं। कुटुम्ब छिन्नभिन्न हो जाते हैं। क्लेश, झगड़ा और उत्पात मच जाता है। श्रीमोटा ने अपने समग्र जीवनकाल के दौरान कभी पैसों का मोह अनुभव नहीं किया। इस अर्थ में 'गरीबी' को अपने जीवन के शृंगार के रूप में बताते थे।

एक करोड़ रुपए व्यक्तियों के पास से प्राप्त कर उतनी ही राशि 'लोककल्याण के कार्य' के लिए नियोजित कर सके। एक दिन इस बात का स्मरण करते गद्गद् होकर मुझे कहा था, 'मेरे जैसे गरीब आदमी ने जिंदगी में एक रुपया देखा नहीं था। उसके पास करोड़ रुपए होने पर भी एक पाई भी निजी लेने की इच्छा नहीं हुई। मायादेवी की मुझ पर ऐसी कृपा है।'

श्रीमोटा ने हमारी पैसों पर की पकड़ को ढीला कर, बड़ा उपकार किया है।



श्रीमोटा ने 'लोक कल्याण के कार्य' द्वारा पैसों के प्रति हमारा मोह कम किया है इतना ही नहीं, परन्तु हमारे समग्र अंतःकरण तथा बाह्यकारण भी आपश्री प्रेरित इस महायज्ञ में होम हुए हैं।

हमारे बाह्यकरण हाथ, पैर, आँख, कान, नाक आदि द्वारा प्रभु की शक्ति व्यक्त होती हुई हमें अनुभूत करायी है। जो कार्य हमसे



शायद ही हो पाता है ऐसा कार्य हमारे द्वारा करवाया है। ऐसा काम हो सका है। हमसे आपश्री ने तो भगवान के ही विराट रूप के दर्शन किये हैं। श्रीमोटा ने स्वयं को प्राप्त संबंधो का उपयोग स्वयं प्रेरित कर्मों को फलीभूत करने के लिए किया है। उस समय आपश्री प्रेरित कर्मों में सहभागी होने हमारे में जो उत्साह-उमंग था यह प्रभुशक्ति के लक्षण थे। इससे आपश्री ने गाया है कि,

**‘मिले संबंध सब जो जो, फलीभूत होने कर्म क्या क्या वे !
कृपा से साथ सब देकर पूर्ण जो सो कराया है।’**

इसमें प्रभु की कृपा का ही साथ सूचित होता है, किन्तु श्रीमोटा ने उस कृपाशक्ति को हमारे माध्यम से व्यक्त होते बतलाया है।

‘जीवन में अकेले हाथ जो जो न हो सकता हो वह

मिलनेवालों ने कृपाकर, मददकर, कैसा फलीभूत किया !’

इसमें अपने हाथ को ‘अकेला हाथ’ कहा है और फिर तुरन्त ही मिलनेवालों ने कृपा करके मदद करने की बात कही है। यह सूचित करता है कि जो भी हम सभी लोगों ने मिलकर श्रीमोटा को मदद की ऐसा सरल अर्थ हुआ। परन्तु इससे हम गर्वित नहीं हो जाय इस लिए इसके बाद की पंक्तिओ में ऊपर की इन चार पंक्तिओं के रहस्य के पर्दे को बखूबी से हटाया है।

‘हृदय इसलिए तुमसे कहा, हजारों हाथवाला हैं !

अनुभव क्या जीवन का मुझे प्रभु ने ऐसा करवाया है।’

(जीवनअनुभवगीत, पृ. ४४३)

‘पुरुषसूक्त’ में परम पुरुष परमात्मा का वर्णन आता है। उसमें ‘हजारों’ शीर्ष, आँखे, हस्त आदि का विवरण प्रस्तुत किया है। यह सारा तो प्रतीकात्मक है, क्योंकि परमपुरुष तो अनुभव से प्रमाणित है। वह आँखो से दीखें ऐसा नहीं है। परन्तु इन दो पंक्तिओं में ऐसे



प्रतीक का अर्थ श्रीमोटाने रहस्यमयता बनाकर प्रस्तुत किया है। 'हजारों हाथवाला प्रभु' इसका अर्थ मात्र 'हाथ', 'पैर' गिनना नहीं है, परन्तु प्रभु की अनंतगुनी शक्ति के संकेत को समझना है। श्रीमोटा ने आगे की पंक्ति में कहा है कि मेरे 'अकेले हाथ' से यह काम नहीं होता इसमें 'अकेले हाथों से नहीं होता' ऐसा उपरी अर्थ नहीं समझना है, किन्तु प्रभु आत्मानुभवी किसी भी काम का कर्ता पद धारण करते ही नहीं हैं। उनमें प्रगट हुआ सामर्थ्य हमारे सभी में रही प्रभुशक्ति को जागृत करता है। इससे हमारी इच्छा या हमारे संकल्पों के बल के बिना हमसे 'अपने आप' श्रीमोटा प्रेरित लोक कल्याण के कार्य के लिए सम्मिलित होने संभव हुए हैं। हम ऐसी भगवती शक्ति के वाहक बनते हैं इसलिए हमारे जीवन के कर्मयज्ञ का उत्पन्न महत्त्व का काल बन जाता है।

श्रीमोटा के 'अकेले हाथ' हमारे सभी के 'हजारों हाथ' को स्पर्श कर आपश्री के अनुभव को प्रयोगात्मक रूप से आँखों से देखा जा सके ऐसा बनाया है। इस तथ्य का प्रमाण आपश्री द्वारा रचित दूसरे एक भजन से प्राप्त होता है।

श्रीमोटा ने हरि के सामर्थ्य को हम में जागृत किया है। भले ही हमें पता न चला हो, परन्तु वास्तविकता यही है। आपश्री की चेतनाशक्ति हम में 'मिल' (एकरस हो) गयी है। और उस शक्ति द्वारा हम में हरि के प्रति थोड़ा सा भी रंग चढ़े ऐसा उद्देश्य था। श्रीमोटा का सही 'कार्य' तो यही था। इसलिए आपश्रीने लिखा है,

'हरि का रंग जीवन में जरा लग सके इसलिए,

सभी के साथ मिलना हरि ने ही रखाया है।'

इन पंक्तियों को बारीकाई से पढ़ने पर स्पष्ट होता है कि श्रीमोटा हमारे साथ जिस तरह मिलते हैं और 'मिल' जाते हैं, यह प्रक्रिया हरि से हो

रही है। श्रीमोटा व्यक्त रूप से स्वयं कभी किसी के क्रिया कर्ता होते ही नहीं है। उनके द्वारा प्रभु ही सब करवाते हैं।

आपश्री हमारे में मिले हैं, पर हम तो श्रीमोटा को 'मिले हुए' हैं। हम श्रीमोटा को किसलिए 'मिले' हुए हैं ? हम में भले ही इस उद्देश्य की जागृति न हो, पर श्रीमोटा के लिए तो आपश्री के "हरि के द्वारा सौंपे गये कार्य की 'देखभाल' के लि मिले हुए हैं।" 'प्रभु का कर्म' यानी कौन-सा कर्म ? प्रभु द्वारा सौंपा गया कार्य, यह कौन सा कार्य ? हमारे अतःकरण से रागद्वेषादि कम हों यही प्रभु का कार्य है। ऐसे 'हरि कार्य की देखभाल' लेने के लिए हम आपश्री को मिले हुए हैं ! प्रभु का यह कार्य चलता रहे ऐसी सावधानी रखें इससे इंगित होता है। 'देखभाल करना' यानी ध्यान रखकर संभालना ऐसा होता है। इसीलिए आपश्रीने लिखा है,

'हरि ने कार्य सौंपे हैं, अलग-अलग स्वजन वे वे-

प्रभु तुज कर्म की देखरेख के लिए जीवन में क्या मिले हैं।'

हम सभी के साथ की गूढ़ आध्यात्मिक प्रक्रिया कैसे श्रीमोटा ने इन दो पंक्तिओं में अद्भुत रूप से बता दिया है। इसीलिए ही श्रीमोटा ने इस तथ्य को अधिक विस्तार से स्पष्ट करते हुए लिखा है -

'हमें तो सभी के पास से प्रभु का कार्य लेना है;

और उसी उद्देश्य हेतु, हमें सभी मिले हैं !'

हम सभी जिस उद्देश्य हेतु श्रीमोटा को मिले हैं वह कार्य कब फलीभूत होगा, उसकी स्पृहा, आपश्री को होगी ही नहीं क्योंकि आपश्री ने तो सब कुछ हरि चरणों में सौंप दिया है। आपश्री ने लिखा है-

'होता जो भी सभी के लिए कृपा से सब किया है,

कुछ फलना, न फलना हरि हाथ रहा है।'

(जीवनअनुभवगीत, पृ. ४६४)



श्रीमोटा द्वारा जो कुछ भी किया जाता है, वह श्रीप्रभु की कृपा शक्ति से होता है। आपश्री में हरि पूर्णरूप में विद्यमान हुए हैं, इसलिए इस प्रकार लिखते हैं। अंतिम पंक्ति में 'हरि-हाथ' रहा है, शब्द अत्यन्त मार्मिक हैं। इसे समझने के लिए पिछले भजन में 'हजारों हाथवाले' हरिरूप का संकेत स्मरण में रकें तो आपश्री ने प्रभु की कृपाशक्ति से हम सभी के लिए उसे फलीभूत करने हेतु हमारे 'हाथ' में रखा है। तात्पर्य कि हमारे जागृतिपूर्वक के संकल्प द्वारा ऐसे प्रभुमय जीवन के संकल्प को हम जीवन में चरितार्थ करने पुरुषार्थरत हैं।

इससे ऐसा समझ सकते हैं कि श्रीमोटा ने 'लोककल्याण के कार्य' प्रेरित कर हमें आध्यात्मिक जागृति देने का और उसका विकास कर हरिचरणों में हमारे समग्र प्राकृतिक रूप की आहुति देकर परमात्मा का अखण्ड आनंद पैदा किया है। इसके लिए आपश्री से कैसी प्रक्रिया हो रही है उसका अत्यन्त आकर्षक वर्णन इस गज़ल में है।

प्रभुचरणों में स्वजन

(गज़ल)

हमारे जे सम्बन्ध हैं न कोई भी वे निजी है;
प्रभु-प्रीत्यर्थ के कर्म में, हमें वे करने आहूत हैं !
हमें क्या आरंभ किया कर्म-यज्ञ कृपा से,
और आहुति देने के लिए मिले हैं वे सब !
प्रभु-कृपा से वे, जीवन को फलीभूत होने में,
निमित्त-संयोग से, स्वयं ही क्या हमें मिले हैं !
मिले सम्बन्धी-साथी सचमुच उपयोग किये बिना,
रह सकते किस तरह ? सभी को सुनाऊँ कहाँ ?



हृदय प्रवेश हेतु साधन हमें प्रकृति क्या है !

चरण में मोड़ने का कौन हमारा हेतु जानता है !

मिले साथ जीवन की हमारी प्रीत पुरानी है;

हृदय प्रार्थना से सब को चरण में होमना है !

(जीवनअनुभवगीत, पृ. ४६४)

श्रीमोटा का हमारे साथ का सम्बन्ध अर्थात् उनमें 'प्रगट हुए परमात्मा की' हम में अप्रगट बैठे हुए परमात्मा के साथ की एकरूपतावाला जीवात्मा के साथ का संबंध । इससे, आपश्री के अनुभव से वह निजी नहीं है । तात्पर्य कि परमात्मा स्वरूप में वह सम्बन्ध निष्पक्ष है । इस संबंध का उद्देश्य हम सभी को हरिचरणों में अर्थात् हमारे हृदय रूपी गुफा में परमात्मारूप आधार में आश्रय देने का है । परन्तु आपश्री के उद्देश्य को फलीभूत होने में सहायक होने के बदले विपरीत दिशा में हमारी गति है । इसलिए आपश्री ने प्रभुकृपा से जो 'कर्म का यज्ञ' आरंभ किया और उसे 'प्रभु प्रीत्यर्थ' का कर्म बताया क्योंकि उस कर्म की भूमिका में, उसकी होती रहती सतत क्रिया में और उसे परिणाम की ओर ले जाने में केवल 'प्रभु' है । ऐसे 'कर्म यज्ञ' में आपश्री हम सभी की आहुति सम्मिलित करते हैं । यहाँ हम सभी की यानी हमारी सभी प्रकार की लौकिकता की तथा हमारी सभी प्रकार की जीवदशा की आहुति ।

श्रीमोटा में 'जीवन' की अखण्डता अर्थात् चेतन के गुणधर्म सतत सक्रिय है । जो 'स्वयं' के हैं वे सभी में हैं । अतएव आपश्री 'सभी' में हैं । परन्तु सभी में वह 'चेतन' वह 'जीवन' फलीभूत हो इसके लिए हम सभी श्रीमोटा को प्राप्त हुए हैं । हम श्रीमोटा को कैसे प्राप्त हुए हैं ? 'निमित्त-संयोग से ।' श्रीभगवान ने गीता में अर्जुन से



कहा था, 'मेरे और तुम्हारे अनेक जन्म हुए हैं, इसे तुम नहीं जानते हो, पर मुझे उसका ज्ञान है।' इसी अर्थ में हमारे अनेक जन्मों के श्रीमोटा के पूर्वजन्म के किसी प्रकार के संबंध होंगे ही। श्रीमोटा ने जो अनुभवदशा प्राप्त की इससे हम आपश्री को 'निमित्त संयोग' से मिले। हम सभी आपश्री के 'निमित्त' हैं। आपश्री 'अनुभव' से हमारे साथ जुड़े हुए होने पर भी साक्षीवत् होने से वे हमसे बंधे हुए नहीं हैं। हमारे साथ आपश्री चेतनरूप में—चेनाशक्ति से तद्रूप होते हुए भी समग्र प्रक्रिया के साक्षी भी हैं। इससे 'निमित्त संयोग' से हम आपश्री को मिले इसका हमें आश्चर्य है और आपश्री की यह गूढ़ बात पूरी तरह व्यक्त नहीं हो पाई इसमें रहस्यमयता भी है। इससे हम श्रीमोटा को मिले यह वास्तविकता 'हमें कैसे मिले हैं!' ऐसा विस्मय व्यक्त किया है। हम सभी को याद रहे कि रहस्यपूर्ण - गूढ़ होना यह भी चेतन अथवा प्रभु का लक्षण है।

इस प्रकार हम आपश्री के साथ संबंध में आये इसलिए 'संबंधी' बने और आपश्री हमारे साथ ही रहने लगे इसलिए 'साथी' बने। आपश्री द्वारा प्रेरित कर्मयज्ञ में हमें उनके सहयोगी बनाया। अतः हमें वे उपयोग किये बिना कैसे रह सकते हैं? हमें उपयोग में लेने की — काम में लेने की आपश्री की पद्धति एकदम स्पष्ट नहीं की गई है। अतः लिखते हैं, 'सभी को कहाँ सुनाऊँ?' आपश्री की ऐसी गूढ़ प्रक्रिया को कौन सुनेगा? तथापि वे तो परम प्रेमी हैं। श्रीमोटा का हमारे प्रति अपार असीम प्रेम है और वह बहता ही जाता है। हमारा हृदय अनेक प्रकार के मोह, माया, ममता, राग और भाव से भरा हुआ है। इन सभी आवरणों को हम समर्पित नहीं कर पाते हैं। हमारे हृदय के ऐसे संसारी भाव हमारी प्रकृति स्वभाव से व्यक्त हुआ करते हैं।



इससे श्रीमोटा ने हमारी प्रकृति के व्यक्त गुण को 'स्वयं' का प्रवेश द्वार बनाया। हमारे 'हृदय' में आपश्री ने चेतन रूप में प्रवेश किया और हमारे हृदय में ऐसा गूढ़ भाव जगाया कि हम 'अपने आप' आपश्री द्वारा प्रेरित कर्मयज्ञ की 'आहुति' रूप बन गये। श्रीमोटा का 'अनुभव' कैसी कक्षा था इसकी कल्पना या अनुमान हमसे नहीं हो पाएगा। परन्तु हम सभी के जो आराध्य हैं, उपास्य हैं और जो अनेक रूपों में हमारे सदा के 'साथी' हैं, उन्होंने अपने देह रूप में कैसा अपूर्व अवतार सिद्ध किया इसे समझना भी एक आनंद है।

प्रकृति के गुणों से 'पर' होना—त्रिगुणातीत होना, यह एक अवस्था है। परमात्मा का ही यह सामर्थ्य है। इससे आगे स्वयं की प्रकृति का स्वामी होने का अनुभव रहा करे यह है। परन्तु स्वयं के साथ के—स्वयं के अनेक पूर्वजन्मों के सम्बन्ध और इस जन्म में 'मिले हुए' की प्रकृति को माध्यम बनाकर असंख्य 'निमित्तों' के हृदय में प्रवेश कर 'प्रभुभाव' जागृत करा देना यह कितना अपूर्व—अनुपम है इसका तो हमें आश्चर्य अनुभव करना चाहिए! इतना जानने पर यदि अहोभाव जागे तो हमारा दिल उसमें रहे! हमारे सभी के हृदय में प्रवेश कर—उसी आधार में मोड़ने का आपश्री के सम्बन्ध का तथा आपश्री प्रेरित कर्मयज्ञ में होमने के उद्देश्य कि किसे पहचान है? ऐसा आपश्री ने पूछा है। संस्कृत काव्यशास्त्र की भाषा में श्रीमोटा के इस प्रश्न द्वारा काकू द्वारा व्यंजना की है, ऐसा कहलाएगा। अतः इसका दूसरा अर्थ मुझे सूझ रहा है। श्रीमोटा ने इस पंक्ति में 'को' ऐसा लिखा है। इसलिए मुझे उस एक अक्षर के शब्द में 'कोई' पढ़ा गया और पंक्ति के अंत में आनेवाले प्रश्नार्थ चिह्न को दूर करने पर ऐसा अर्थ करता हूँ कि 'प्रकृति द्वारा हृदय में प्रवेशकर हरिचरण की ओर ले

जाने का हमारा उद्देश्य कोई पहचानता है !' उस 'कोई' शब्द में हम सभी आ जाते हैं। हम ऐसे 'कोई' बने रहें। बलात् खींच तानकर ऐसा अर्थ नहीं निकाला है। परन्तु हमारे साथ आपश्री के 'जीवन' की पुरानी प्रीत है। इसलिए बहुत लम्बे काल की प्रीत है — बहुत जन्मों की प्रीत है। इस प्रीत की शक्ति ही इस अर्थ की झाँकी दे सकती है।

आपश्री हम सभी को 'चरणों' में होम रहे हैं। और यह 'होमात्मक विधि' परमात्मारूप हृदय में प्रार्थना के साथ हो रही है। अतः श्रीमोटा की चेतना शक्ति हमारे अंतःकरणों में ऐसा कार्य कर रही है, इसका हमें पता भी नहीं चल रहा है।

इस प्रकार आपश्री द्वारा प्रयोजित 'कर्मयज्ञ' में हमारा सर्व 'स्व' होम हो, इसमें हमें मात्र स्पर्श ही करना है। यह स्पर्श यानी जागृति। 'जागृति' भी आपश्री की शक्ति से ही अनुभव होती है। इस यज्ञ की ज्वाला को हमें जीवदशा के द्रव्यों से प्रज्वलित रखना है। हमारे व्यवहार में आनेवाली जागृति से ऐसा होमात्मक यज्ञ लगातार चलता ही रहेगा। पुरोहित पद पर श्रीमोटा हैं। क्योंकि श्रीमोटा स्थूल या साकार रूप में नहीं हैं। ये तो चेतन रूप हैं। 'वे' सर्व में और सर्वत्र हैं। हमें उनके ऐसे रूप में 'होनेपन' के प्रति मात्र सभान ही होना है और सजग रहना है।



‘मैं सर्वत्र विद्यमान हूँ ।’

— मोटा

पूति

१. हरिःॐ आश्रम — संचालन में मौलिकता ७७
२. हरिःॐ आश्रम प्रेरित ८५
३. लोककल्याण के कार्य ९५
४. आश्रम की प्रवृत्ति विषयक कुछ विशेष
प्रकाश पडे, इसके लिए आश्रमवासियों
को दी गई सूचनाएँ ९९
५. मौन-मंदिर में रहनेवाले साधक को मिलती
सूचनाओं में से कुछ सूचनाएँ १०१
६. नामस्मरण : वैज्ञानिक अभिगम और पृथक्करण १०३
७. आरती ११२

१. हरिःॐ आश्रम – संचालन में मौलिकता

वर्तमान हरिःॐ आश्रम नड़ियाद और सुरत में अस्तित्व में है, उनका संचालन व्यवहार प्रभु की चेतनाशक्ति के लक्षण प्रगट हो इस तरह आयोजित हैं। इन में अनेक प्रकार की विशेषताएँ हैं और विलक्षणताएँ हैं।

सभी जानते हैं कि इन आश्रमों की स्थापना श्रीमोटा ने की है। मौनएकान्त की साधना पद्धति में आपश्री के अनुभव से प्रगटी हुई चेतनाशक्ति कार्यरत है। तब भी श्रीमोटा आश्रम के स्थापक या प्रणेता की तरह नाम रूप कहीं दीखते नहीं हैं। श्रीमोटा आश्रम के ट्रस्टीमंडल के किसी भी पद पर नहीं थे। यह पद्धति मात्र नम्रता के दिखावे के लिए नहीं है और न आदर्श को प्रस्तुत करने के उद्देश्य से ही है। परन्तु श्रीमोटा अनुभव रूप में परमात्मा हैं, उससे वे नामरूप में नहीं हैं। आपश्री सर्वात्मरूप में सूक्ष्म हैं। आपश्री सूक्ष्म रूप में आश्रम के संचालन की रूपरेखा के मूल में होने से प्रगट होने की आवश्यकता नहीं है। इससे श्रीमोटा ने स्वयं को आश्रम का 'अधिष्ठाता' कहा है। 'अधिष्ठाता' शब्द 'अधिष्ठान' के साथ जुड़ा है। 'अधिष्ठान' यानी 'आधार'। इस अर्थ में श्रीमोटा आश्रम के आधार हैं। सभी के आधार 'स्वयं' होने से आपश्री को किसी पद पर रहने की क्या आवश्यकता है? जो स्वयं परमसत्ता रूप हैं उसे दूसरे पद की क्या आवश्यकता है?

श्रीमोटा हरिःॐ आश्रम के 'अधिष्ठाता' आधार रूप है। अतएव आश्रम के संचालन में जुड़े सभी उस 'अधिष्ठाता' के 'सेवक' हैं। ट्रस्टीमंडल के सदस्य, व्यवस्थापक ट्रस्टी या प्रमुख यह तो



संचालन हेतु पद की संज्ञाएँ हैं। १९ जुलाई, १९७६ के पत्र में श्रीमोटा ने अपने साथ रहनेवालों को 'सेवक' के रूप में बतलाया है। प्रमुख या मैनेजिंग ट्रस्टी या दूसरे किसी भी पद से अधिक उपर का पद 'सेवक' है। 'सेवक' शब्द का अर्थ 'सेवा करनेवाला' होता है। सेवा करने का अर्थ सूक्ष्म है। 'सेवा-पूजा' का संबंध प्रभु के साथ है। 'सेवा' शब्द का मूल अर्थ 'सेवन करना' (सेवा-भक्ति करना) से है। 'सेवा करने की क्रिया' पक्षी सृष्टि में ही होती है। जिस तरह पक्षी तल्लीन होकर अंडा सेते हैं, इसी तरह 'सेवक' को स्वयं प्राप्त कर्म में तल्लीन हो जाना है। पक्षी के अंडे से पक्षी का जन्म न हो तब तक अंडा सेया जाता है। इसीतरह 'सेवक' स्वयं से चेतनाशक्ति प्रेरित हो ऐसी भावना से प्राप्त कर्म दायित्व बोध से करता है। ऐसी भावना से होते रहते कर्म द्वारा अंडा समय संयोग से फूटेगा और एक नया 'जीवन' अपने आप में से जन्मेगा तब 'सेवक' के अंतर की गहरायी में रहे 'अधिष्ठाता' आधाररूप स्वयं के विस्तार और विविधता के दर्शन कराएगा।

ऐसे अधिष्ठाता के सेवकों के आदर्श पक्षी जैसा यानी कि आकाश की भूमिकावाला बनना है। ऐसे आदर्श फलीभूत हो तभी श्रीमोटा का आश्रम 'प्रभु कृपा से शोभित' होगा ऐसा बतलाया है। हरिःॐ आश्रम के तंत्र में श्रीमोटा की मंत्र शक्ति है, क्योंकि ये आपश्री के शब्द हैं। ये शब्द मंत्र शक्ति रखते हैं।

इसका लक्ष्य रखते हुए बुद्धि से जो प्रकाश प्रकाशित होगा और श्रीमोटा के आश्रम का उद्देश्य फलित करने हेतु सक्रिय होने लगेंगे यही आश्रम की भावना के विस्तार का लक्षण है। इस प्रकार के सेवकों की एक पंक्ति आश्रम के तंत्र में सक्रिय है।



दूसरी पंक्ति के सेवक-बतलाये कार्यों को करनेवाले सैनिक हैं। आश्रम के आसपास के गाँवों में से आवश्यक जितनी संख्या में युवकों को सेवेतन कार्य करने के लिए नियुक्त किया जाता है। परन्तु इन सभी के बीच सेठ-नौकर का भाव न रखकर सभी आश्रम के कार्यों के अंग हैं ऐसा मानकर काम होता है। श्रीमोटा ने कहा है कि कर्म में क्रिया का महत्त्व नहीं है। परन्तु कर्म करते समय हमारे मन में कैसा भाव रहता है, उस भाव का महत्त्व है। ऐसा 'भाव' ही कर्म से मुक्ति दिलाकर परस्पर की 'एकता' का अनुभव करवाता है। तभी भी प्रकृति और स्वभाव के बल के प्रति असावधान रहने से घर्षण, टकराव या मतभेद खड़े हो तो सभी अपने ही स्वभाव का दोष खोजकर अंतर में ही क्षमाभावना रखकर मानसिक हार्दिक उदारता रखकर 'एक' राग से सेवा करनी होती है।

श्रीमोटा ने देशसेवा के क्षेत्र में काम किया था। आपश्री का अनुभव था कि 'सेवा' की मूल भावना सतत नहीं टिक पाती। इससे रागद्वेष तो प्रगट होंगे ही। व्यवहार में, प्रबंधन में कम से कम रागद्वेष पैदा हो ऐसी आपश्री ने व्यवस्था की है। काम के अलावा एक भी अधिक आदमी आश्रम में रहे ही नहीं, ऐसी व्यवस्था रखी। प्रत्येक व्यक्ति पूरे दिन अलग-अलग प्रकार के कार्य में लगा रहे। अतः संघर्ष से बचेगा। दो बार भोजन के समय तथा साप्ताहिक प्रार्थना के समय सभी ही साथ में बैठे।

मौनमंदिर में बैठे साधक की सेवा यह आश्रम का मुख्य कार्य है। सुबह चार बजे से रात के आठ बजे तक प्रत्येक प्रकार की आवश्यकता समयानुसार पूर्ण करने का कार्य सभी सेवक करते हैं।



आश्रम का महत्त्व का घटक रसोईघर है। प्रातः सुबह पाँच बचे तथा दोपहर दो बचे चाय—कोफी—उकाला (आवश्यकतानुसार) पहुँचाया जाता है। सुबह दस बजे और शाम पाँच बजे सादा भोजन पहुँचाया जाता है। भोजन में दाल—भात, घी बिना की चपाटी, एक सब्जी होती है और शाम को हांडवा, रोटी, सब्जी या कभी खिचड़ी, ढोकला आदि पकाया जाता है। पहले थाली मौनमंदिर में भेजने के बाद बाहर रहे सेवक एक पंक्ति में बैठकर भोजन करते हैं। इस पद्धति का उद्देश्य समभाव पैदा करना है। श्रीमोटा जब भी आश्रम में उपस्थित होते तब आपश्री भोजन लेने सभी के साथ ही बैठते। भोजन का प्रारंभ करने से पहले 'ॐ सहनाववतु' प्रार्थना समूह में बोली जाती। इस प्रार्थना में गुरु—शिष्य के संबंध से आंतरिक विकास हो इसके लिए प्रभु की प्रार्थना है। इस प्रकार की प्रार्थना भोजन के समय की जाती है। इसमें मुझे असंगतता लगा करती थी। क्योंकि इस प्रार्थना में क्रियापद द्विवचन में हैं। यदि गुरु—शिष्य दो अकेले ही होते तो यह प्रार्थना उचित होती। समूह की प्रार्थना यह किस तरह हुई? इस प्रश्न को मैंने बहुतों से पूछा था—किन्तु किसी का भी उत्तर संतोषजनक नहीं था। मैंने श्रीमोटा को एक समय पूछा, 'इस प्रार्थना में तो मात्र गुरु—शिष्य की—दो व्यक्ति की ही—प्रार्थना है तो समूह की प्रार्थना किसलिए? फिर उसका भोजन के समय क्या संबंध है?'

श्रीमोटा ने मुझे प्रेम से समझाया था तब से मेरा संपूर्ण समाधान हुआ। गुरु अपने सभी शिष्यों के साथ आत्मभाव से एकरूप हैं। परन्तु शिष्य को अपने गुरु के साथ का संबंध द्वैतभाव का है। प्रत्येक शिष्य अपनी—अपनी कक्षानुसार गुरु के साथ के



भाव संबंध में होता है। इससे प्रत्येक शिष्य की प्रार्थना में गुरु सामिल होने से उसमें द्विवचन हो सकता है। 'ॐ सहनाववतु' की प्रार्थना में ऐसा आता है कि 'मा विद्विषावहै' 'हम एक दूसरे से द्वेष न करें'। हमें प्रश्न होता है कि गुरु-शिष्य के बीज में द्वेषभाव पैदा हो सकता है? यह भी संभव है। यह द्वेष सूक्ष्म और उच्च भूमिका का होता है। शिष्य में गुरु के प्रति तेजोद्वेष प्रगट हो सकता है। फिर अन्य शिष्यों के साथ का गुरु का व्यवहार का हार्द न समझने से भी द्वेष-असूया पैदा हो सकती है। गुरु पूर्ण परमात्मा के निरन्तर अनुभव में आकर पूर्ण साक्षीत्व की स्थिति में न हो तो शीघ्रता से प्रगति कर रहे शिष्य के प्रति सूक्ष्म स्वामित्व भाव जागता है। श्रीमोटा हिमालय के अघोरी बाबा के पास गये थे, तब बाबा का श्रीमोटा के प्रति ऐसा भाव जागा था।

यह प्रार्थना भोजन के समय की जाती है इसका तात्पर्य यह कि भोजन के दौरान प्रत्येक व्यक्ति षडरस में तल्लीन और एक तान होता है। पास में बैठकर भोजन करनेवाले की ओर भी उसका ध्यान नहीं जाता है। ऐसे एकाग्रता के क्षणों में गुरुभाव को शिष्य के करणों में प्रवेशकर उसका जो कुछ भी बने उसे योग्य बनने की सरलता प्राप्त होती है।

आश्रम में भोजन के समय होनेवाली प्रार्थना का यह विवेचन तर्क संगत और समाधानकारी है।

हरिःॐ आश्रम में भोजन सादा किन्तु स्वादिष्ट बनाया जाता है। रस यह प्रभु का रूप है। भोजन द्वारा ही जो छः रस अनुभव होते हैं, वे पाचनक्रिया में सहायक होते हैं। श्रीमोटा कहते हैं कि भोजन तो स्वादिष्ट होना चाहिए। भोजन भी रसपूर्वक प्रसन्नता से लेना चाहिए। रसपूर्वक खावें; पर उसके लिए भोजन नहीं। रस में



लोलुप होकर अधिक खाना जीवनसाधक के लिए अनुचित है । हरिःॐ आश्रम में रसोई जरा भी न बिगड़े, उतने ही प्रमाण में रसोई बनायी जाती है । तला या मिष्ठान्न नहीं बनता । तब भी बाहर से कोई भिजवाये तो थोड़ा-थोड़ा समान भागों में बाँटकर प्रसाद रूप में दिया जाता है । आश्रम में भोजन तमस् प्रेरित करनेवाला नहीं होता । भोजन में लसून, प्याज की मनाई की है ।

सादा भोजन बने इसके पीछे श्रीमोटा का ध्येय आध्यात्मिक समता लाना है । आश्रम के निर्वाह के लिए समाज का जो वर्ग सहायता करता उसके घर की रसोई के साथ आश्रम की रसोई का मैल बैठना चाहिए । आश्रम को समाज के मध्यमवर्ग के लोगों की ओर से सहायता मिला करती है । उस वर्ग की ओर से प्राप्त राशि का उचित उपयोग हो इसलिए रसोई में खाना सात्त्विक होने पर भी सादा बनाया जाता है । दूसरा आध्यात्मिक भाव यह है कि आश्रम में भोजन के समय आनेवाले मुलाकाती लोग खानेवाले को देखें तो उनके मन में जरा भी अन्यथा भाव न जागे । आश्रम में पहले से बतलाये बिना आये तो भोजन की संभावना लगभग नहीं होती, क्योंकि पूरे माप के साथ भोजन बनता है । हरिःॐ आश्रम में भाजेन के समय प्रत्येक के प्रति समभाव और परस्पर अभेदभाव रखा जाता है । यहाँ दाताओं के बीच कक्षाभेद नहीं रखा जाता ।

आश्रम में कोई भी व्यक्ति काम के बिना बैठकर प्रमादी न रहे, यह अति आवश्यक है । आश्रम के प्रारंभ के दिनों में तो श्रीमोटा स्वयं सुरत से नड़ियाद आते तब सब्जी की गँठरी उठाकर लाते । आश्रम के रसोईघर में बैठकर सब्जी काटते । आश्रम को स्वच्छ रखने के लिए लगातार देखभाल की जाती है । उसके पैड़ पौधों का भी ध्यान रखा जाता है । सुरत आश्रम के फल वृक्षों की



देखभाल की जाती है। आश्रम की गटरों की साफ सफाई से लेकर हिसाब लिखने तक के कोई भी काम भक्तिभाव से हों उसका महत्त्व श्रीमोटा ने समझाया है।

कार्य करने में सावधानी, सुघड़ता, निष्ठा और उस काम को पूर्ण करने में त्वरा रखी जाय यह आवश्यक है। परन्तु उतावलेपन से काम न बिगड़े अथवा अधूरा न रखा जाय — यह सब आध्यात्मिक जीवनविकास के लिए मूलभूत आवश्यकता है, ऐसा श्रीमोटा ने बतलाया है। श्रीमोटा कुछ भी यद्वातद्वा चला ही नहीं लेते। अपने निकटवर्ती के साथ वज्र से भी कठोर बनकर उसे गढ़ते। पुष्प से भी अधिक कोमलता से प्यार कर उसका संवर्धन करते और उनके कहने में रहे तो पूरी तरह उसका संरक्षण करते। समयपालन पूरी तरह जागृति से होता। श्रीमोटा कहते, 'काल भगवान है। उसकी उपासना के बिना कुछ भी साधा नहीं जा सकता।' कर्म में त्वरा और परिणाम के लिए धीरज रखना बहुत आवश्यक है। कहीं भी आने-जाने में देर से भी नहीं और पहले भी नहीं, समय से ही पहुँचे। इससे आश्रम में चौबीस घण्टे—दैनिक कार्य समयानुसर ही होता। कभी भूल हो तो उसे स्वीकार नम्रभाव से क्षमा माँग लेना और अधिक जागृत होकर काम किया जाता। जो समय के साथ रहता है, उसे समय साथ देता है — यह जीवन का बुनियादी सत्य है। इसीसे अधिक आध्यात्मिक जीवन के प्रति अभिमुख होता है और इसके लिए तो यह सत्य अनिवार्य स्वीकार्य होता है।

आश्रम निर्वाह के लिए चीज-वस्तुएँ चाहिए। झाड़ू से लेकर बिजली के बल्ब, साग-सब्जी, अनाज, बर्तन, फर्नीचर-स्टेशनरी आदि जो-जो आवश्यक वस्तुएँ आ मिलें उन्हीं से चला लिया जाता।



आवश्यक वस्तुएँ सौगात के रूप में आतीं—चाय, चीनी, अनाज आदि । इससे आश्रम के निर्वाह खर्च के लिए धन की कम आवश्यकता पड़ती । तब भी जो राशि आती उसका उपयोग समाज कल्याण के काम में होता ।

श्रीमोटा ने मौनएकान्त में रहनेवालों के पास से खर्च के लिए राशि लेनी सूचित की है । जपयज्ञ का यह यजमान यज्ञ के लिए खर्च स्वयं 'उठाये' ऐसा आपश्री ने बतलाया है । एक सप्ताह के यज्ञ के लिए केवल पैतिस रुपए लिये जाते हैं । आज १९९६ (आज २००९) में भी चौबीस घण्टे बिजली-पानी की पर्याप्त सुविधावाले मौनएकान्त में रहने-खाने का प्रतिदिन के केवल पांच ही रुपए लिये जाते हैं । आश्रम के संचालन की सादगी और मितव्ययिता के भाव की कोई भी अध्यात्म रसिक सम्मान करेगा । तन-मन या धन से आश्रम की सेवा करने के सिवा पहले से सूचित करके आनेवाले आश्रम की रसोई में खाये तो वह 'मुफ्त' नहीं खाएगा । श्रीमोटा कुछ भी 'मुफ्त' न दिया जाय और कुछ 'मुफ्त' न लिया जाय, इस सिद्धान्त के आग्रही थे, क्योंकि दुनिया के व्यवहार से लेकर आध्यात्मिक प्रगति तक 'कुछ' भी अर्पण किये बिना 'कुछ' भी प्राप्त नहीं किया जा सकता है । यह बुनियादी सिद्धान्त है । 'लेने-देने' की नीति का पालन हो यह अनिवार्य है ।

इस प्रकार आश्रम के व्यवहार में श्रीमोटा ने आध्यात्मिक दृष्टि की प्रतिष्ठा की है । केवल बातों से नहीं, पर अपने आचरण में आध्यात्मिकता किस तरह अवतरित हो, उसका प्रत्यक्ष दृष्टान्त आश्रम के प्रबंधन द्वारा दर्शाया गया है ।



२. हरिःॐ आश्रम प्रेरित

हरिःॐ आश्रम के अधिष्ठाता—आधार, विस्तार और विविधता के लक्षण लाक्षणिक रूप से व्यक्त हुए। १९६१ में आपश्री हमें समझाने के लिए कहते हैं, 'मेरे गुरु महाराज ने आदेश दिया कि तुम अब समाजोत्थान के कार्यों करो। एक करोड़ रुपए का काम कर।' तब श्रीमोटा ने पैसे प्राप्त करने की कठिनाई और मिले तो देनेवाले को किस तरह बदला चुका सकें इसकी दुविधा व्यक्त की। तब गुरुमहाराज ने कहा, 'रुपए तुम्हें मिल जाएँगे और उन रुपयों की मदद करनेवालों का बदला चुकाने की जवाबदारी मैं अपने ऊपर रखता हूँ।'

श्रीमोटा ने हरिःॐ आश्रम की स्थापना के पहले जिस आदर्श का दर्शन व्यक्त किया था, उसकी प्रयोगात्मक सफलता मौनएकान्त कमरों में होती जाती है जबकि उसका व्यापक रूप में प्रस्तुत होता लक्षण हरिःॐ आश्रम के कार्यों से सिद्ध हो रहा है। १९४६ के दर्शन के बाद चार वर्ष के बाद १९५० में आश्रम रूप में साकार हुआ और आश्रम की स्थापना बाद के छः वर्ष बाद १९६१ 'मुझे समाज का उत्थान करना है।' ऐसे उद्घोष द्वारा व्यापक चेतना को जागृत करके उसकी सक्रियता के दर्शन का विज्ञान प्रगट करने का आरंभ हुआ। १९६१ से १९७६ तक (देहत्याग २३-७-७६) समाज के पास से एक करोड़ रुपए मिले और समाजोत्थान के कार्य में महालक्ष्मी की शक्ति सक्रिय हुई। और मीठे फल बीस वर्ष बाद आ रहे हैं; संकते मिल रहे हैं। १९७६ में देहत्याग से पूर्व आपश्री द्वारा व्यक्त की भावना के अनुसार 'गुजरात के पिछड़े गाँवों' में



जहाँ पाठशाला का एक भी कमरा न हो वहाँ कमरे बनवा देना आश्रम को जो कोई भी राशि मिली, वह १९९६ तक आठ करोड़ की हुई। यानी कि श्रीमोटा के देहत्यागा के पश्चात् किसी भी प्रकार की माँग, टेक या विज्ञान के बिना समाज के पास से, दूसरे बीस वर्षों के दौरान इतनी राशि मिली और समाजोत्थान के कार्य में उसका उपयोग हुआ। इस शक्ति-प्रवाह का कारण क्या था यह अब कहने की आवश्यकता नहीं है।

१९६१ के बाद रुपए प्राप्त करने का श्रीमोटा का उपक्रम अलौकिक था। रुपए प्राप्त करने के माध्यम द्वारा श्रीमोटा ने अनेक जीवों के साथ प्रत्यक्ष या परोक्ष संबंध बाँधे। हरिःॐ आश्रम प्रेरित कार्यों के लिए जो कोई धन एकत्र करने जाते वे भी श्रीमोटा की चेतनाशक्ति से प्रेरित होकर जाते और उन्हें दान राशि देनेवाले स्वयं श्रीमोटा को दे रहे हैं, यों समझते। श्रीमोटा फंड इकट्ठा करने के लिए घूमे नहीं। किन्तु भोजन के लिए आमंत्रण देने का विज्ञापन करके, भोजन के पश्चात् दक्षिणा माँगी है। स्वयं बीस वर्ष तक हरिजन सेवक संघ की ओर से समाज की सेवा की है। इससे समाज 'रोटी' दे यह तो 'पेन्शन' है। इसमें समाज उपकारी नहीं है और दक्षिणा में भी जो कुछ मिले वह श्रीमोटा निजी या आश्रम निर्वाह में उपयोग करनेवाले नहीं है, परन्तु समाज के चरणों में ही यह राशि दुबारा समर्पित करनेवाले हैं। इससे भी दक्षिणा देनेवाला व्यक्ति समाज का ऋण चुकाकर ऋणमुक्ति प्राप्त करता है। इस तरह भी दाता उपकारक नहीं है। इससे विशेष श्रीमोटा ने व्यक्ति के जीवन में ऋण चुकाने की शुभ निष्ठा का बीज रोपा है। हम समाज के पास से धन प्राप्त करते हैं तो समाज के हित-कार्यों के



लिए समाज को भाग देना, यह धर्म है। इस प्रकार आपश्री ने धर्मकार्य की दिशा खोल दी।

इस तरह राशि प्राप्त करने के पीछे दूसरा आशय भी था। हम में स्वार्थ तो होता ही है, परन्तु स्वार्थ का प्रमाण इतना अधिक बढ़ गया कि समाज की समतुला न बनी रहे ऐसी स्थिति का निर्माण हुआ। हम में स्वार्थ कम हो ऐसा श्रीमोटा ने सूचित नहीं किया, परन्तु सामाजिक संतुलन बनाये रखने के लिए परमार्थ की वृत्ति जागृत की और स्वयं को जो कोई मिले उनका स्वार्थ कम कर परमार्थ की ओर प्रेरित किया।

श्रीमोटा ने अपने परमात्मनुभव को संपूर्ण गुप्त रखा था। पर उसके साथ ही हरिःॐ आश्रम के विषय में भी समान से किसी को बतलाया नहीं। इतना ही नहीं पर श्रीमोटा की संमति के बिना किसी से प्रचार कार्य हो तो उसे उलाहना भी देते। एक समय जानेमाने साहित्यकार श्री जयभिखवु आश्रम की मुलाकात के लिए आ गये और आश्रम की मौनएकान्त की पद्धति तथा आश्रम की शान्ति रमणीयता से प्रसन्न हुए थे। फिर उन्होंने समाचार पत्र में आश्रम के विषय में विवरण लेख रूप में प्रकाशित किया। स्वयं स्थापित संस्था के विषय में बिना प्रयत्न एसा प्रचार हो तो स्थापक खुश होकर लिखनेवाले का आभार माने, यह स्वाभाविक है। परन्तु श्रीमोटा ने तो श्री जयभिखवु को उल्लाहना देते हुए पत्र लिखा कि लोगों को बिना वजह जानकारी प्राप्त करनेवाले पत्रों का उत्तर देने का काम बढ़ाया। हमें प्रचार की बिलकुल आवश्यकता नहीं है। १९६१ तक श्रीमोटा कभी प्रवचन नहीं करते थे। जब भी निमित्त सामने आया तब जैसे इकट्ठे करने के निमित्त प्रवचन करना भी



प्रारंभ किया। और हरिःॐ आश्रम की ओर से होनेवाले समाजोत्थान कार्य विषयक समाज को जानकारी हो इसलिए पत्रकारों को भी प्रेरित किया। इसके लिए श्रीमोटा ने स्वयं के जन्मदिन, दीक्षादिन और साक्षात्कार दिन मनाने की भी संमति दी।

श्रीमोटा की इस प्रवृत्ति का गर्भित उद्देश्य तो आध्यात्मिक था। अपने पूर्व के अनेक जन्मों के निमित्त स्वयं को मिले इसके लिए काल संक्षिप्त करने आपश्री ने ऐसे उत्सवों को मनाने की संमति दी थी। प्रत्यक्ष हेतु राशि इकट्ठा करना था। परन्तु सूक्ष्म उद्देश्य हमारी पैसों पर की पकड़ ढीली करके हमारे हृदय को उदार करना था। श्रीमोटा के प्रवचन की शैली लाक्षणिक रहती थी। उसमें अनेक बातें आ जातीं। आपश्री कहते, 'पैसा तुम्हारे बाप का नहीं है, यह तो काल ऐसा आ रहा है कि तुम्हारा सब कलक की नोंक से चला जाएगा। इसलिए स्वार्थ कम करके परमार्थ करो.... यह लक्ष्मी तो हमारी माँ है। उसे बाँहों में नहीं भरना है। लक्ष्मी तो भगवान की है। इस बात को समझो।' इसके साथ ही ऐसा कहते, 'तुम्हारे जीवन से रागद्वेष कितने कम हुए? काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, आशा, इच्छा, तृष्णा, लोलुपता कितने कम हुए? यों ही भगवान के नाम की बात न करो। अखण्ड सोलह घण्टे भगवान का नाम लेने के बाद आ जाओ, मैदान में। समाज में गुण और भाव प्रकटे बिना धर्म नहीं जागेगा। त्याग और परमार्थ धर्म के लक्षण हैं। मुझे तो समाज को समर्थ बनाना है। समाज यानी भगवान। इसलिए तुम सब दो। तुम मुझे देते हो यह मुझ पर उपकार नहीं करते।' और प्रवचन समाप्त करते हुए अवश्य कहते, 'इतना सुनने के बाद धोती झाड़कर खड़े मत हो जाना। यहाँ थाली रखी है। उसमें आशा अपेक्षा रखे बिना



दिल से रखना । लोग यों ही सिर झुकाते हैं—यह दंभ है । समर्पण बिना का पैर पड़कर वंदन कैसा ? इसलिए यहां रखते जाना भाई ।’ इस प्रकार के लाक्षणिक वचन श्रीमोटा कहते थे ।

श्रीमोटा को लोग रुपए देने लगे । इन रुपयों से आपश्री ने अपने निजी वाहन-व्यवहार खर्च के लिए या हरिःॐ आश्रम के निर्वाह के लिए एक रुपया भी नहीं रखते थे । समाज से प्राप्त सारी राशि समाजोत्थान के कार्य में वे समर्पित करते । जब समाज के पास दान हेतु माँगना आपश्री ने प्रारंभ किया; उससे पहले स्वयं को पुस्तकों की विक्री से प्राप्त तथा अपने स्नेही मित्रों की ओर से मिले बावन हजार रुपयों का दान गुजराती साहित्य परिषद, अहमदाबाद को दिया था ।

श्रीमोटा सर्वप्रथम समाजोत्थान के लिए काम निश्चित करते, फिर उसके लिए कितनी राशि उकट्टी करनी पड़ेगी उसे निश्चित करके, निश्चित समय में यह राशि इकट्ठी करने की घोषणा करते । हर वर्ष योजना के प्रकार बदलते । हजारों से प्रारंभ कर लाखों रुपयों तक का लक्ष्यांक घोषित करते और समयानुसार प्रभुकृपा से उतनी राशि एकत्रित हो जाती थी ।

यदि कोई व्यक्ति, व्यक्तिसमूह या संस्था श्रीमोटा को राशि देने की तत्परता बतलाते और उसके लिए श्रीमोटा को निमंत्रण देते तो श्रीमोटा वहाँ अवश्य जाते थे । इसीलिए आपश्री को लगातार प्रवास में रहना पड़ता था । १९६१ के बाद आपश्री के शरीर में अलग-अलग पीड़ादायी रोग भी होने लगे थे । १९७० तक आपश्री का पूरा शरीर रोगों से घिर गया था । ऐसे शरीर से भी आपश्री प्रवास करते रहते । श्रीमोटा सो सरलता से बड़ी राशि प्राप्त हो इसलिए



किसी ने महायज्ञ आयोजित करने का सुझाव दिया था। श्रीमोटा ने इसका इन्कार किया था क्योंकि इसमें प्रजा को एक उद्देश्य बतलाकर, धर्मलाभ की लालच देकर रुपया एकट्टा करना था। श्रीमोटा के उद्देश्य के साथ यह संगत नहीं था। एक बार एक सिद्ध पुरुष ने श्रीमोटा को जितने रुपए चाहिए उतने तत्काल देने के लिए कहा। और रुपयों के लिए ऐसा श्रम न लेने की शर्त रखी। उसका भी श्रीमोटा दो हाछ जोड़कर नम्रता से अस्वीकार किया था। यह वास्तविकता बतलाती है कि श्रीमोटा मात्र रुपए इकट्ठे करने के लिए नहीं घूमते थे। इसके पीछे दूसरे अनेक सूक्ष्म आशय थे। उन सभी आशयों की मीमांसा करते हुए बहुत विस्तार हो जाएगा एतएव यहाँ मात्र इतना उल्लेख पर्याप्त है।

श्रीमोटा को लोग जो रुपए देते थे। वे सारी राशि वैसी ही रहे और उसके ब्याज से ही काम हो ऐसी योजना आपश्री ने की थी। जिससे लक्ष्मी में से बहा आता शक्तिस्त्रोत कभी बंद न हो। वर्ष दौरान कुछ भी काम न हुआ तो ब्याज की रकम मूल में जुड़ जाय। परिणामस्वरूप शक्ति का संवर्धन हो। इसके अलावा जिन जिन संस्थाओं में यह राशि दी जाती उसका संचालन खर्च उन संस्थाओं को भुगतना होता था। इससे संस्थाएँ भी समाजोत्थान के कार्य में जवाबदार और सहभागी होतीं और श्रीमोटा को प्रजा के पास से मिली रकम का भविष्य में भी दुरुपयोग होने की संभावना कम हो जाय। समाजोत्थान के कार्य के लिए श्रीमोटा ने पूरे देश की अलग-अलग संस्थाओं को उत्तरदायित्य सौंपा। हरिःॐ आश्रम केवल देखभाल करनेवाली तटस्थ संस्था रही। इस तरह हरिःॐ आश्रम प्रेरित कार्य विकेन्द्रित होते ही श्रीमोटा की चेतनाशक्ति का



विस्तार होने लगा । यह कोई संस्था अमुक वर्ष तक योजनानुसार काम न करे तो मूल रकम ब्याज के साथ हरिःॐ आश्रम को वापस लौटाने की भी शर्त रखी । यह योजना की क्रियान्विति के लिए भविष्य में मतभेद होने पर हरिःॐ आश्रम के सेवक तथा संबंधित संस्था के कार्यकर्ताओं को एकत्रित कर परामर्श समाधानपूर्ण हल निकालने का श्रीमोटा ने सूचित किया था । वित्तीय संचालन और व्यवहार के नियम के पीछे भी श्रीमोटा का आध्यात्मिक अभिगम ही रहा है, जिसे कोई भी व्यक्ति जाँच सकता है ।

हरिःॐ आश्रम प्रेरित समाजोत्थान की योजनाओं द्वारा व्यक्ति में निहीत गुणात्मक शक्ति बढ़ती जाँय, यही मुख्य उद्देश्य है । साहस, पराक्रम, हिंमत, प्रामाणिकता, त्याग, शूरीरता जैसे गुण पैदा हों ये भागवती शक्ति के लक्षण हैं । और ऐसे गुणों के प्रति समाज में सम्मान की दृष्टि खिले यह भक्ति का लक्षण है । ऊँचे प्रकार का भावनामय आचरण परार्थ हेतु व्यक्त हो और उसे यदि सम्मान मिले तो समाज के अधिकतर वर्ग में ऐसे गुणों की प्रतिष्ठा होने की भूमिका बनेगी । हमारे शास्त्रों का सूत्र—‘**गुणाः पूजास्थानम् गुणिषु, न च लिंगम न च वयः**’ पूजा के योग्य गुणवान व्यक्ति के गुण ही हैं—उसकी जाति या उम्र नहीं । यहां पूजा का अर्थ सम्मान है ।

हरिःॐ आश्रम प्रेरित योजनाओं के पीछे ध्यान देने योग्य विशेषताएँ हैं । किसी भी पारितोषिक के साथ आपश्री ने कभी भी अपना नाम या दानदाता व्यक्ति का नाम चाहकर भी नहीं जोड़ा । ‘स्वयं’ तो अनुभव से नामरूप से पर होने से उन्हें ऐसी प्रतिष्ठा की आवश्यकता ही नहीं थी । परन्तु अमुक बड़ी राशि का दाता का



नाम भी न जोड़कर दाता के अहंकार को दूर रखा है। यों भी श्रीमोटा ने दाता का नाम जोड़ने की शर्त पर कोई भी दान नहीं लिया था। परन्तु श्रीमोटा ने विभिन्न क्षेत्रों में पारितोषिकों के साथ उन उन क्षेत्रों में विशेष और विशिष्ट प्रदान हेतु सिद्धि प्राप्त करनेवाले व्यक्तियों के नाम जोड़े हैं। और ऐसे लोगों को सम्मान देकर समाज का ऋण चुकाया है। श्री अरविन्द, सिस्टर निवेदिता, डॉ. होमी भाभा, डॉ. विक्रम साराभाई, वीर सावरकर आदि के नाम पारितोषिकों के साथ जोड़े हैं। जब ऐसे व्यक्तियों के नाम के साथ पारितोषिक विजेता को प्राप्त हो तब उसका चित्त एक आदर्श की ओर प्रेरित होता है। साथ ही हरिःॐ आश्रम प्रेरित पारितोषिक होने से श्रीमोटा की चेतनाशक्ति केन्द्र के साथ उसका अज्ञान मन जुड़कर सूक्ष्म संस्कार ग्रहण करेगा।

अह हरिःॐ आश्रम प्रेरित जिन-जिन क्षेत्रों में दान दिये जाते हैं, उसका तात्पर्य समझें। श्रीमोटा से जिस प्रकार की योजनाओं के लिए हरिःॐ आश्रम द्वारा जो दान दिये गये हैं, उनमें विविधता है और प्रत्येक में मौलिकता है। इन योजनाओं की वर्तमान में अनिवार्यता है और आनेवाले भावी के संकेत परखकर उसमें मानवजीवन कल्याण की दिशा में अधिक प्रगति हो उसकी भूमिका है। अनुभव के स्तर पर जिसने कालातीत अनुभव प्राप्त किया हो उनमें ही ऐसी मौलिक योजना होती है। इसके अलावा इन योजनाओं के पीछे आध्यात्मिक दिशा में उन्मुख करने के संकेत हैं तथा श्रीमोटा में उद्भवित परमात्मा की शक्ति के विस्तार में पैदा होनेवाली संभावना भी है। दोनों वास्तविकताओं की झाँकी श्रीमोटा



के देहत्याग के बीस वर्ष बाद हो रही है। इनमें से केवल तीन मुख्य योजनाओं के प्रकार के विषय में विचार करेंगे।

(१) समुद्र तरण और पर्वतारोहण जैसी स्पर्धाओं द्वारा शरीर-शक्ति के अलावा भयजनक स्थिति में कूद पड़ने की साहसिकता और उसमें से पार उतरने की हिंमत जैसे गुण अध्यात्म मार्ग के प्रवासीके लिए आवश्यक और अनिवार्य है। आत्मानुभव के उच्च शिखर को पार करने में पृथ्वी तत्त्व और जल तत्त्व स्वीकारात्मक नहीं होते। तेज, वायु और आकाश तत्त्व में परमात्मा प्रगट होते हैं। परन्तु इन दो तत्त्वों पर भागवती शक्ति की विजय हो यह आवश्यक है। इन तत्त्वों की गहनता और उसमें आनेवाले तूफान जीतकर पार उतरना — नदी, समुद्र तैरने द्वागा इंगित होता है।

पर्वतारोहण की क्रिया में पृथ्वी के आकर्षण से ऊँची दिशा में आरोहण करने का साहस है। जीवन में स्थूल का आकर्षण प्रबल होता है। उसमें से उपर उठने की भावना पर्वतारोहण से आती है, ऐसा इस स्पर्धा से इंगित होता है। रस्सा पकड़कर शिखर पर पहुँचने की पद्धति में पहाड़ को हाथ-पैर का काम से कम स्पर्श देना होता है। स्थूल का मात्र इतना ही आधार रखकर, बाकी का अंग उससे पर रखकर ऊर्ध्वारोहण हो सकता है। ऐसी स्पर्धाओं के पीछे ऐसा आध्यात्मिक रहस्य हो सकता है।

(२) श्रीमोटा ने अधिक से अधिक राशि विज्ञान की लगभग सभी शाखाओं में सतत संशोधन होते रहें तथा शिक्षा एवं समाजविद्या में भी संशोधनों को प्रोत्साहन मिलता रहे उद्देश्य निमित्त पारितोषिकों की योजना की है। संशोधन कार्य के लिए मन-मति की गहरी एकाग्रता आवश्यक है। ऐसी एकाग्रता होते ही चेतनानिष्ठ



पुरुष की चेतनाशक्ति संबंधित संशोधन के करणों में प्रवेशकर कार्य करती है। इससे अनेक बार संशोधक की धारणा से कई बार ऊँचे परिणाम आते हैं। श्रीमोटा ने समझाया है कि वैज्ञानिक संशोधन में डूबा विज्ञानी चेतन के अनुभव की संभावनावाला होता है। मात्र ऐसे अनुभव के प्रति वह पर्याप्त सजग न होने से वह प्राप्त नहीं कर पाता। अंतिम शब्दावली के अंतिम दो दशकों के दौरान हुए आविष्कारों का प्रमाण देखकर श्रीमोटा को 'चेतन व्यक्त होने' के 'प्रभु के आगमन' के संकेत लगे हैं।

पृथ्वी पर स्थित मानवमात्र के कल्याण के लिए, सुख के लिए संतो की चेतनाशक्ति द्वारा कितना महान कार्य फलित हो रहा है यह जानकर हम सभी को आनंद होता है। यह सभी प्रभु की शक्ति से हो रहा है। इसकी सभानता बढ़ती जाय तो भी सही अर्थ में धर्म-संस्थापन का कार्य सिद्ध होगा ही।

(३) अब अंत में श्रीमोटा ने स्वेच्छ से देहत्याग करने से पूर्व अपने १९-७-७६ के पत्र में लिखा है कि आपश्री के शरीर की मृत्यु के निमित्त जो भी राशि प्राप्त हो उसका उपयोग, गुजरात के आर्थिक रूप से एकदम पिछड़े हुए गाँव में—जहाँ पाठशाला का एक भी कमरा न हो वहाँ निर्माण करावें। आपश्री की इस भावना को साकार करने गुजरात की प्रजा ने अपूर्व उल्लास व्यक्त किया और अंतिम वर्षों के दौरान छः हजार से अधिक गाँवों में गरीब बालकों को पढ़ने के लिए बैठने की छत्त मिल गयी।

गरीब को अक्षरज्ञान मिलेगा, वह पढ़ेगा तभी उसमें जोश पैदा होगा और वह आत्मनिर्भर होने को संघर्ष करेगा। गरीबी दूर करने का यह एक मूलभूत सिद्धान्त है। श्रीमोटा ने नगर में रहते सुखी



जीवों को गाँव में गरीबों के प्रति सहानुभूति के लिए प्रेरित कर शहर और गाँवों के बीच में खाई का अंतर कम किया है और गहरी खाई मिटा दी है। फिर शाला के कमरे में बैठकर पढ़नेवाला विद्यार्थी अज्ञात रूप से हरिःॐ आश्रम के प्रति कृतज्ञ बनता है और उसके लिए हरिःॐ आश्रम को दान देनेवाला समाज के निम्न वर्ग के प्रति सहानुभूतिवाला बनता है।

इस प्रकार हरिःॐ आश्रम प्रेरित 'लोककल्याण के कार्य' कल्याण-श्रेय को ही सिद्ध करते हैं।



३. लोककल्याण के कार्य

पूज्य श्रीमोटा की ओर से हरिःॐ आश्रमों द्वारा निम्नलिखित विविध प्रकार की प्रवृत्तियों के लिए दान दिया जाता है —

- (१) भक्ति संबन्धी और भावनात्मक साहित्य के मौलिक सर्जन हेतु।
- (२) बालकों में गुण और भावना पैदा हो ऐसी मौलिक कहानियों के सर्जनार्थ।
- (३) बहनों और माताओं के जीवन के प्रति समाज के मानस में सद्भाव, आदर और मान हो ऐसे साहित्य का सर्जन।
- (४) 'ज्ञान गंगोत्री' — संदर्भ ग्रंथो (Book of knowledge) का प्रकाशन, 'बालभारती', 'किशोरभारती' विज्ञान श्रेणी के ग्रंथ तथा सर्वधर्मी तत्त्वज्ञानदर्शन आदि श्रेणी के ग्रंथों की प्रकाशन योजना।



- (५) मानवसमाज में साहस, हिंमत, पराक्रम, प्रामाणिकता, निष्ठा, त्याग, सहनशक्ति आदि गुणों की सम्मान भावना के प्रतीक के रूप में चन्द्रक देना ।
- (६) स्त्रियों के शरीर सुदृढ़ बनें और उनमें गुण एवं भावना के संस्कार पैदा हों, ऐसी सक्रिय योजनाएँ ।
- (७) विद्यार्थियों में गुण और भावना का विकास हो ऐसे निबंधों की स्पर्धा ।
- (८) छोटे - छोटे गाँवों की स्कूलों में गुण और भावना पनपे ऐसी पुस्तकों का वितरण ।
- (९) पुराने जर्जरित हो गये घाटों की मरम्मत और विभिन्न सामाजिक संस्थाओं को सहायता ।
- (१०) पिछड़े वर्ग की बहनों को एस.एस.सी. इत्यादि में प्रथम आने पर शिष्यवृत्ति ।
- (११) खेड़ा जिल्ला में अस्पृश्यता निवारण के क्षेत्र में जो व्यक्ति अच्छे से अच्छा कार्य करें उन्हें प्रति वर्ष चाँदी का बड़ा शील्ड ।
- (१२) नड़ियाद, सुरत और राजपीपला में स्नानागर, तापी और नर्मदा नदी में तैराकी स्पर्धा अखिल हिन्द स्तर पर समुद्र तैराकी स्पर्धाओं की योजना, राज्य कक्षा पर समुद्र में नौका स्पर्धा तथा मेरेथोन दौड़-रैस योजना ।
- (१३) युनिवर्सिटी द्वारा श्रीअरविन्द तत्त्वज्ञान व्याख्यानमाला तथा अन्य व्याख्यान मालाएँ ।
- (१४) फलवाले वृक्षों का रोपण, प्याऊ, तितिक्षा स्पर्धा, विद्यार्थियों को सहायता, छोटे गाँवों की शालाओं के निर्माण में सहायता, पक्षी को दाना, दवा-सहायता आदि ।



- (१५) वेद की ऋचाओं के अर्थ आम जनता को सुलभ हों, ऐसे पुस्तकों का प्रकाशन ।
- (१६) विज्ञान, खेती, मेडीसिन, सर्जरी, इलेक्ट्रॉनिक्स, प्लेनेटरी एन्ड स्पेश सायन्सिज़, गाँव और शहरों में सस्ते और मजबूत मकानों के निर्माण आदि क्षेत्रों में इन्डाउमेन्ट के ब्याज में से प्रतिवर्ष बड़ी राशि के अखिल भारतीय स्तर पर समृद्ध सम्मानपूर्ण पारितोषिकों की योजनाएँ ।
- (१७) विद्यार्थियों में श्रम का महत्त्व बढ़े ऐसों ट्रस्टों और कन्या व्यायामशालाओं को उत्तेजन ।
- (१८) हाईस्कूल कक्षा के विद्यार्थियों तथा विद्यार्थिनीओं के लिए साइकिल और दोड़ स्पर्धा पारितोषिक ट्रस्ट ।
- (१९) पर्यटन, पर्वतारोहण, बोटिंग, पैदल यात्रा और खेलकूद द्वारा गुजरात की समग्र युनिवर्सिटियों के विद्यार्थियों में साहस, हिंमत, निडरता आदि गुणों के विकासार्थ भिन्न-भिन्न ट्रस्टों की योजनाएँ ।
- (२०) संगीत-वाद्य-नृत्य और चित्र ललितकलाओं की स्पर्धा योजना और वार्षिक पारितोषिक ।
- (२१) ब्रिटिश इन्सइक्लोपेडिया के तरह का अकार क्रमानुसार कोश की ग्रंथ श्रेणियों एवं गुजराती साहित्यकोश प्रकाशन ।
- (२२) गुजरात राज्य कक्षा पर समग्र युनिवर्सिटियों के विद्यार्थियों के लिए विभिन्न विषयों की प्रतिभा शोध और उत्कर्ष के लिए स्पर्धात्मक परीक्षाओं द्वारा पारितोषिकों की योजना ।
- (२३) रामायण, महाभारत, भागवत आदि ग्रंथों की तिरंगी, सचित्र और सरल शैली में कहानियों का प्रकाशन—ट्रस्टों की योजनाएँ ।



(२४) गुजरात राज्य स्तर पर हरी-सूखी खेती, बागबानी, रेशम और उसके रेशे, समुद्र शास्त्र, पुरातत्त्व विद्या, बायोजिओ-सोईल केमिस्ट्री, बोटनी प्लान्ट पैथोलोजी, ट्रोपिकल डीसीसिज़, इन्जीनियरिंग और टेकनीकल विषय, रंग और रंग द्वारा निर्मित साधन, प्राणीविज्ञान शास्त्र आदि विभिन्न विषयों की गुजरात की अलग-अलग युनिवर्सिटियों द्वारा स्पर्धात्मक पारितोषिकों की योजनाएँ ।

उपरोक्त दान योजना के लिए १९६२ से १९७६ तक एक करोड़ रुपए समाज से प्राप्त कर प्रदान किये हैं ।

२३ जुलाई, १९७६ के दिन पूज्य श्रीमोटा ने देहत्याग किया । तब से आज तक (सन् २००९) प्राथमिक शाला का एक भी कमरा न हो ऐसे गाँव के क्षेत्र में करोड़ो रुपए दान दिये गये हैं ।

शालाओं के कमरे के लिए	रु.	१३,७९,६८,६५२
अकाल, बाढ़ आदि कुदरती		
आपत्ति में सहाय	रु.	६१,३५,४११
मौलिक संशोधन ईनाम		
खेलकूद कला वीरता ईनाम	रु.	५२,४०,९६५
		<hr/>
	रु.	१४,९३,४५,०२८

पूज्य श्रीमोटा की यह दान गंगा के द्वारा गुजरात के वनवासी क्षेत्रों के गाँवों में ९०५१ शालाओं के कमरे और पढ़ाई की अन्य सुविधाओं का लाभ तीन लाख से अधिक विद्यार्थीओं को मिल रहा है ।





४. आश्रम विषयक प्रवृत्ति पर कुछ विशेष प्रकाश पड़े इस तथ्य को ध्यान में रख, साधकों को दी गई सूचनाएँ निम्नानुसार हैं ।

१. इस स्थान का अस्तित्व जीवनविकास के उद्देश्य के लिए है अर्थात् श्रीभगवान के अनुभव तथा भगवानमय जीवन के लिए ही है । जिस जीव को जीवन विषयक मनन, चिंतन और निदिध्यासन करने तथा उसे जीवन में प्रत्यक्ष आकार ले वैसे मंथन में रहने का दिल हो, अपने जीवन के विषय में गहराई से पृथक्करण करके स्वयं को खोजने की जिसे तमन्ना हो, उसके लिए यह स्थान है । बिना उद्देश्य पड़े रहने के लिए नहीं है । मकान उजड़ पड़ा रहेगा तो कोई बात नहीं, पर जीव यदि यहाँ उज्जड़ पड़े रहेंगे तो उसमें बहुत अधिक आपत्ति है ।
२. यदि कोई मौन लेना चाहता हो उसे पहले से अपना नाम लिखवाना होता है और उसकी बारी आएगी तब उसे जानकारी दी जा सकेगी, इसके लिए अपना पता बतलाना होता है । यह जपयज्ञ होने से यज्ञ में बैठनेवाला व्यक्ति अपना खर्च स्वयं ही देगा ।
३. जिन्हें मौन एकान्त न लेना हो ऐसे जीव भी यहाँ अवश्य रह सकते हैं । पर अपना समय धार्मिक और आध्यात्मिक अध्ययन में या सुबह-शाम अपनी-अपनी प्रार्थना, ध्यान आदि में सोचने का दिल हो उनसे लिए यह स्थान है, मात्र खाली रहने के लिए नहीं । यहाँ उपन्यास या वैसे साहित्य का पठन नहीं किया जा सकता ।



४. यहाँ कोई जीव संसार भोग नहीं पाएँगा । यहाँ किसी भी संसारी प्रकार के रिस्तों का संबंध नहीं है । यहाँ कोई पति नहीं है, पत्नी नहीं है । न कोई सासू है, न कोई बहू । यहाँ आने के बाद 'इसने ऐसा क्यों किया और ऐसा क्यों नहीं किया ?' ऐसे विचार मन में नहीं लाने चाहिए । कोई किसी से आशा भी न रखे ।
५. यहाँ जो इकट्ठा होते हैं उन्हें राजनीतिक, व्यापारिक, व्यावहारिक, खेती से संबंधित या सांसारिक ढंग की बातें नहीं करनी होंगी । धर्म या जीवन साधना की बातें करने होती हैं । किसी को भी किसी की बात नहीं करनी है । स्वयं अपने विकास विषयक समझ या ऐसे क्षेत्रानुभव का आदान-प्रदान ही कर सकते हैं । मन आनंदित एवं शांति में रहे, इस स्थिति में ही रहना है ।
६. आश्रम के कामकाज करने को दिल हो उन्हें अपने विकास हेतु वह काम करना चाहिए ।
७. जो कोई यहाँ रहे वह रात के आठ बजे तक सो जावें और सुबह देर से देर चार बजे उठ जावें । सुबह का भोजन देर से देर दस बजे और शाम को पाँच बजे ।
८. मौनएकान्त समय के प्रारंभ और अन्त की प्रार्थना के अलावा यहाँ इस स्थान का कोई भी सामूहिक कार्यक्रम नहीं है । स्वयं अपने आप अपनी भावनानुसार कार्यक्रम बनायें ।



९. ध्यान रखना है कि इस स्थान में सभी, हो सके उतनी शांति बनाये रखें, इसका अर्थ ऐसा नहीं है कि मुक्त कंठ से हास्य या दूसरी आनंद ध्वनि न करें। इसे तो अवश्य कर सकते हैं। मन को आनंद शांति में बहलाये रखने की स्थिति में ही रहना चाहिए।
१०. यहाँ आनेवाले व्यक्ति पहले से सूचना दें।



५. मौन-मंदिर में रहनेवाले साधक को दी जानेवाली सूचनाओं में से कुछ सूचनाएँ

१. मौन-मंदिर में बैठनेवाले को अपना अपना कार्यक्रम निश्चित कर लेना होगा। उसे अपने पास रखें और उसी के अनुसार आचरण करें।
२. उठने का समय प्रातः साढ़े तीन बजे। दाँतुन-ब्रश कर के, धोने के कपड़े, चद्दर, कवर, रूमाल आदि खिड़की में रख देने होंगे।
३. मौनकक्ष की सफाई अच्छे ढंग से करनी होगी। प्रतिदिन दो बार हाथ पहुँचे वहाँ तक की दीवारों को साफ करके कचरा निकालें।
४. चाय सुबह ४-४५ बजे और दोपहर १-३० बजे। भोजन सुबह १० बजे और शाम को ४ बजे। इस समय के अनुरूप दिनभर का कार्यक्रम बनायें।



५. लघुशंका करने स्नानघर में न जाकर पाखाना में जाएँ । पाखाना जाते समय कपड़े बदलकर जाएँ । हर समय पाखाने से आकर हाथ-पैर, मुँह साफ करके धोयें । पाखाने में साबून से हाथ-पैर न धोयें । ऐसा करने से मल के जन्तु मर जाते हैं और फिर बहुत दुर्गंध आती है ।
६. भोजन प्रार्थना कर स्वस्थता और प्रसन्नता से लें । खूब चबाकर खायें । भोजन हो सके उतना कम लें ।
७. दिन में न सोयें । सोने से संपूर्ण भाव (मूड) बदल जाएगा और ऊब आएगी । विचारों की पकड़ से बाहर आने के लिए जोर से नामस्मरण करते हुए नाचें-कूदें ।
८. दोपहर का समय कुछ कठोर होता है । उस समय जप करते-करते पढ़ें । ये दोनों एक साथ अवश्य होंगे । स्वयं की स्थिति के अनुरूप भजन गायें ।
९. विकारों का आक्रमण हो तब खूब जोर से नामस्मरण करें और अंत में नग्न हो नाचें-कूदें ।
१०. दिन में कम से कम डेढ़ घण्टे मौन-कक्ष में चक्कर लगाने का अभ्यास करें ।
११. रात को नींद न आने पर जप करें, भजन गायें या पढ़ें ।
१२. प्रतिदिन धुले स्वच्छ कपड़ें पहनें ।
१३. मौनकक्ष में हजामत करने की मनायी है ।

-
१४. मौनकक्ष में खाने की - नास्ते की या व्यसन की कोई भी वस्तु न ले जाएँ। फोन, लेपटोप, गणक यंत्र, टेप रेकोर्ड या रेडियो आदि अंदर न ले जाँय।
१५. मौनकक्ष में या आश्रम के बाहर की व्यवस्था में कोई तकलीफ हो तो बिना संकोच चिट्ठी लिखकर जानकारी दें। अति आवश्यक होने पर ही 'बेल' घण्टी का उपयोग करें।
१६. मौन की पूर्णाहुति के अलगे दिन अपना निवदेन तैयार करें। यद्यपि यह अनिवार्य नहीं है। तब भी दिया जाय तो अच्छा रहेगा जिससे दूसरों को प्रेरणा मिलेगी।



६. नामस्मरण : वैज्ञानिक अभिगम और पृथक्करण

● समर्पण के प्रयोग :

जैसे H_2O की वास्तविकता का सभी प्रयोग सिद्ध यथार्थ के रूप में स्वीकार करते हैं। उसी तरह अनेक देशों के अनेक समाजों के, अनेक धर्मों के, अनेक संस्कृति के भिन्न-भिन्न मानवों ने प्रयोग कर बलिदान की भावना से साहस के साथ कूदते हुए सभी प्रकार से तथा सर्वभाव से समर्पण में तदाकर होकर जिस सत्य को अनुभव किया उसे ही जीवन में अपनाया। और, उसी शक्ति द्वारा जीये। समाज के इतरजनों को भी अपने प्रभाव से प्रभावित किया। जीवन



को नयी राह बताने और नयी राह चलाने में वे प्रत्य क्रियाशील, सर्जनशील बने हुए हैं, यह भी एक ऐतिहासिक सत्य है। ऐसे महानुभावों के जीवन के उन-उन कालों में अनेक जीवन के वैसे प्रेमभक्ति ज्ञानपूर्वक के समर्पण के प्रयोग भी संपूर्ण वैज्ञानिक नहीं है क्या? विज्ञान के जिन प्रयोगों को करते हुए सिद्ध कर जगत को जो प्रत्यक्ष है, उसे सत्य सिद्ध कर बताया है, उसी तरह जीवन का नवनीत निकाल निकालकर ऐसे महानुभावों ने अपने जीवन के ऐसे प्रत्यक्ष अनुभव दर्शन करवाये हैं। ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञानभक्तिभाव द्वारा उत्पन्न हुए जीवन में यह क्या प्रयोग नहीं हैं?

ऐसे लोग तो जीवन से परिवर्तित हुए हैं, यह तो प्रत्यक्ष यथार्थ है। इतना ही नहीं पर ऐसे लोगों के जीवन की असर से दूसरे लोगों के जीवन में परिवर्तन की असर भी उन्होंने पैदा की है। अनेक नकारात्मक भाववाले 'जीव' में भी वैसी आत्माओं ने नया परिवर्तन लाने में अनोखी गति दी है, यह भी ऐतिहासिक है।

● प्रभु का स्मरण – व्याख्या और प्रक्रिया :

प्रभु का स्मरण अर्थात् भावात्मक जप द्वारा जीवन को दिशा देने की एक प्रकार की सूक्ष्म प्रक्रिया। उसमें श्रद्धा की आवश्यकता है सही, पर जिसमें यह न हो उसमें भी वह पैदा हो सकती है। किसी में तर्क उठे कि जप से कैसे काम, क्रोधादि कम किये जा सकते हैं? इसका उत्तर यह है कि कोई उसमें समर्पित भाव से कूदे और जप को यदि प्रेमभक्ति की निष्ठा में प्राणवान बना सकें तो उसे उसका पता चल सकता है, ऐसी वास्तविकता कितनी ही बार ज्ञात हुई है।

पाँच तत्त्व और उनकी तन्मात्रा निम्नानुसार है —



तत्त्व		तन्मात्रा
आकाश	—	शब्द
वायु	—	स्पर्श
तेज	—	रूप
जल	—	रस
पृथ्वी	—	गंध

इन पाँच तत्त्वों का तीन गुणों के साथ संबंध है —

- सत्त्व का सम्बन्ध आकाश के साथ
- रजस का सम्बन्ध वायु और तेज के साथ
- तमस का सम्बन्ध जल और पृथ्वी के साथ

शब्द और आकाश संपूर्ण रूप से परस्पर संलग्न हुए हैं। वे परस्पर भिन्न होने पर भी एक हैं। वैसे ही प्रकाश और सूर्य, गर्मी और अग्नि।

शब्द आदि अनादि से है। ऐसे चेतन के प्रतीक शब्द में जब प्राणवान् निरन्तरा, अखण्डता, अटूटता आती है तब आधार में आकाशतत्त्व खिलता है, आगे रहता है। अब आकाशतत्त्व और सत्त्व का परस्पर संबंध होने से, जब आकाशतत्त्व खिलता है और आगे आता है तब आकाश के खिलने के साथ सत्त्वगुण भी खिलने लगता है। और, सत्त्वगुण खिलने पर सत्त्वगुण स्वतः ऊपर उठ जाने पर रजस-तमस गौण बनते जाते हैं। काम-क्रोधादिक विषय तो रजस और तमस गुण के आधार पर ही होते हैं। इसलिए जब तमस-तमस गुण कम होते जाते हैं तब अपने आप कामक्रोधादि कम होते जाते हैं। इस प्रकार चेतनात्मक भाववाचक शब्द में जब प्राणवान् सहज निरन्तरता, अखण्डता और अटूटता पैदा हो, तब कामक्रोधादिक राग-द्वेष को कम करने या मिटाने के लिए श्रेय सधक को कुछ अधिक



कठिनाई नहीं पड़ती। इसकी मूल कारण तो यह है कि ऐसे चेतनावचक शब्द में जब जागृत सहज अखण्डता आती है, तब समग्र आधार में एक ऐसे प्रकार की a distinct kind of awareness—एक सहज सजगता आती है। उसके द्वारा वह आपने ध्येय के प्रति विवेक इतना अधिक जात जाता है कि जिससे वह सत-असत का ठोस निर्णय कर सकता है। इतना ही नहीं, परन्तु ध्येय से विरोध का जो जो कुछ भी हो उससे भिन्न होने में उसे देर नहीं लगती। ऐसे अवसर पर उसका विवेक तो पूरी तरह ध्येय के प्रति दृष्टि, वृत्ति और भावयुक्त हो जाता है साथ ही, जागृत, गतिशील, क्रियाशील और सर्जनशील, अखण्डरूप से सभानतायुक्त, सदा चेतनमय, हर क्षण सहज जाग्रत रहा करता है। ऐसा प्राणवान, सहज, क्रियाशील, गतिशील और सर्जनशील विवेक आने पर श्रेय साधक की दृष्टि, वृत्ति और भाव लगातार सहज रूप से हमेशा प्रतिक्षण ध्येय के प्रति संलग्न और स्फूर्त होते जाते हैं।

मंत्र शब्द में ऐसी प्राणवान सहज सभानता जागृत होने पर उसमें से एक ऐसे प्रकार की भावप्रेरक संनिष्ठा पैदा होती है। ऐसी सहज प्राणवान संनिष्ठा द्वारा अनंत गुणा गुण और शक्ति पैदा होती जाती है। तब गुण को बनाये रखने की आवश्यकता नहीं होती। ऐसी उपरोक्त संनिष्ठा का तो गुण और शक्ति परिणाम होते हैं।

श्रेयसाधक के आधार में जब तक ऐसी संनिष्ठा पैदा नहीं होगी, तब तक ऐसे साधक को गुण और शक्ति संस्कारित करने की उतनी ही आवश्यकता होती है।

प्रभु का स्मरण हो किन्तु रागद्वेषादिक कम न हों तो ऐसे स्मरण का उठाव नहीं आ पाता है। यह भी इतना ही सच है। सामान्य जीव अखण्ड, प्राणवान, लगातार प्रभुस्मरण में लग सके ऐसा तो होना संभव नहीं है। यह तो 'जीव' को volcanic



aspiration जागता है, ऐसी जो ज्वालामुखी जैसे ध्येय के प्रति उत्कट तमन्ना जागती है, वैसे जीव ही शब्द की निरन्तरता में आ सकते हैं। अन्यथा यों ऐसे तो अत्यन्त लघुत्तम सर्जक लघुमती में ही (microscopic creative minority) होते हैं। यों तो सामान्य जीव के लिए तो नामस्मरण या जप उसके जीवनविकास के लिए उत्तम में उत्तम, सरल, निर्दोष और निर्मल साधन होने पर भी ऐसे जपके साथ ही साथ उसे उसमें चेतनप्राण पैदा हो सके इसके लिए रागद्वेषादि कम करने के लिए संघर्ष करते रहना चाहिए। वह इस तरह कर सके तो में गुणात्मक वृद्धि आ सकती है।

किसी भी विषय का हार्द पाना हो तो उसमें उसे न्योच्छावर हो संपूर्ण रूप से समर्पित होना होता है। संपूर्ण रूप से, संपूर्ण भाव से उसमें समर्पण भाव से उसमें समर्पण भाव में लीन हुए बिना उसका हार्द कभी नहीं पाया जा सकता।

जीवन किसलिए है ? जीवन का मूल अर्थ क्या है ? ऐसे अंतर्गत प्रश्न जिसके हृदय में जहाँ तक प्रत्यक्ष रूप से पैदा नहीं हुए, ऐसे जीवों के जप में चेतनप्राण पैदा होने की संभावना बहुत कम रहती है।

शब्द में जब चेतनप्राण और भावप्रेरक प्राणवान सहज संनिष्ठा पैदा होती है तब उसके करण—मन, बुद्धि, चित्त, प्राण, अहम् विशेष से अधिक विशेष तेजस्वी और सूक्ष्म होते जाते हैं। उनके विहार का प्रदेश ध्येय के प्रति ले जानेवाला—कोई निराला ही होता है। ऐसी संनिष्ठा से जो चेतनप्रेरक शक्ति पैदा होती है, वैसी शक्ति द्वारा फिर तो साधक दैवासुर संग्राम और तलवार की धार पर पूरी तरह सभानता से और मर्दानगी से खेल सकता है। उसकी भावना तो



बाद में प्रचंड शक्ति बन गई होती है। ऐसी भावना जब आधार में पैदा होती है तभी प्राणवान सहज भावना में से गुणशक्ति तो पैदा होती ही है, इतना नहीं नहीं परन्तु कला, सौन्दर्य, व्यवस्थिति आदि जैसे जीवन के प्रधान aspects स्वरूप के प्रति भी उसकी सजगता बढ़ती जाती है और इस प्रकार वह सत्यम्, शिवम्, सुंदरम् की दिशा में अनुभव की भूमिका में पात्रता प्राप्त कर सकता है।

प्रभुस्मरण में या उस प्रकार के जप में जब सहज निरंतरता और लगातार सातत्य पैदा होने लगता है, उसके बाद ही आधार के प्रत्येक करण में उर्ध्वीकरण की एक साहजिक, सर्जनशील और क्रियाशील सतत प्राणवान प्रक्रिया का आरंभ होता है।

(A spontaneous creative dynamic and continuous process of sublimation begins.)

भावना पैदा हो जाती है, उसके भी प्रत्यक्ष लक्षण होते हैं। उन्हें परख भी सकते हैं। भावना पैदा होते ही अंतःकरण स्फुरण प्रत्येक कर्म का विवेक ज्ञान आदि सभी उसमें प्रकट हुए बिना नहीं रहता। भावना अर्थात् सभी के प्रति प्रकाश डालनेवाली, प्रत्येक स्वरूप को पहचाननेवाली और प्रत्येक कर्म का दर्शन करानेवाली प्रचण्ड शक्ति है। ऐसी भावना का जो सत्कार और स्वीकार करने लगता है, फिर उनका प्रेम से सत्कार और स्वीकार करने लगता है। ऐसी भावना तो श्रेय साधक के ज्ञान के चक्षु होते हैं। ऐसी प्राणवान सहज भावना में ज्ञान, कर्म और भक्ति का समन्वय और सुमेल होने लगता है। भावना जिस प्रकार भक्तिप्रेरक है वैसे ही ज्ञानप्रेरक भी है और कर्म से ज्ञान एवं भक्ति को वह साकार करती है।

भावनायुक्त शब्द की साधना से हृदय की संपूर्ण एकाग्रता जागती है। हृदय की संपूर्ण एकाग्रता प्राप्त हुए बिना ध्येय का हार्द नहीं पकड़

■
सकते हैं। एकाग्रता केन्द्रित होने से वस्तु के साथ का हृदयपूर्वक का तादात्म्य सिद्ध किया जा सकता है।

● जप का तरीका :

जप की Technique (पद्धति, तरीका एवं गुणमाप)

जप छोटे से छोटा होना चाहिए।

जप में अघोष अक्षर नहीं होने चाहिए। जो जप उच्चारण में बहुत ही सरल हो वह उत्तम।

शब्द के तीन स्थान — १. नाभि, २. कंठ, ३. ब्रह्मरंध्र। इन तीनों का स्पर्श हो उन्हें भेदे; ऐसे अक्षर जिस जप के शब्द हों वह श्रेष्ठ।

श्वासोच्छ्वास के साथ अथवा नाड़ी की धड़कन के साथ जपमंत्र बोलना चाहिए।

जप के मंत्र में गंगा के प्रवाह जैसी सतत लगातार प्राणवान सहज निरन्तरता बनी रहे, तभी अंतःकरण और आंतरिक करणों की योग्य ध्येय के प्रति दिशा देने में वह सही मददगार हो सकता है।

जप में निरन्तरता बनी रहे, यह अत्यन्त आवश्यक है। यह प्रगट हो तो चेतनद्योतक भाव जागेगा ही।

जप जितनी उमंग, भाव और हृदय से किया जाय उतना उत्तम।

मानसिक जप उत्तम है, यह बात सही है। परन्तु प्रारम्भ में सामान्यतः कोई भी मन में तो जप नहीं कर सकता, क्योंकि मन तो संकल्प-विकल्प ही कर सकता है। द्वन्द्व और गुण की भूमिकावाले मन का Function-कार्य तो संकल्प-विकल्प का होता है। इसके बिना तो वह दूसरा नहीं कर सकता है। जब कि जप में सतत दृढ़ अनुरागपूर्ण जाग्रत चेतनमय अभ्यास हो और उसमें से एकसमान



सहजता और निरन्तरता बनी रहे तभी मन में जप की धारणा बन पाती है ।

अनेक प्रकार के आघात-प्रत्याघातों के कारण हमारे शरीर के ज्ञानतंतुओं में कंपन पैदा होता है । ऐसे कंपनों के प्रकार भी अलग-अलग होते हैं । अलग-अलग कंपनों से शरीर में अलग-अलग संवेदन उद्भवित होते हैं । काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, अहम् आदि की उत्कटता से अमुक प्रकार के आवेश और आवेग आते हैं । उनके आघात-प्रत्याघातों से ज्ञानतंतुओं में अलग-अलग प्रकार के कंपन होते हैं । उस आधार में एक प्रकार की समता से संतुलन होता है । उसमें इस प्रकार के कंपन अव्यवस्था लागे हैं । अशांति, असामनता उत्पन्न करते हैं, जिससे ज्ञानतंतु की सरलतायुक्त व्यवस्था का भंग होते रहने से ज्ञानतंतु की कार्यक्षमता घटती जाती है । साथ ही धारणाशक्ति भी घटती जाती है । समत्व टूट जाता है, संतुलन कम होता है फलतः रोगादि होते हैं ।

जप या मंत्र लगातार निरन्तर हृदय से किये जा रहे हों तो ऐसे मंत्र की धारणा से ज्ञानतंतु प्राणवान (tone-up) बनते हैं । इससे ज्ञानतंतु में समता, शांति, संतुलन आदि आते हैं । ऐसी शांति, संतुलन या समता ज्ञानतंतुओं में पैदा होकर उसकी चरमसीमा तक पहुँचती हैं । फलतः शरीर के रोग भी निवारण करने की संभावना पैदा हो सकती है । जप में इसके लिए गंगा के पुनीत प्रवाह जैसी सतत एकसमान लगातार निरन्तरता पैदा हो, बहुत आवश्यक सत्य है । जब जप में ऐसी भावात्मक निरन्तरता आती है, तब मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहं के प्राकृतिक भावों एवम् ध्येय को उचित दिशा में ले जाने के लिए प्रेरणात्मक और कार्यसाधक बनते हैं । मन के संकल्प-विकल्प घट जाते हैं । चित्त में सात्त्विक प्रकार के



संस्कार जन्म लेते हैं। प्राण की कामक्रोधादिक विषयों की स्फुरणा में अपने आप बहुत मंदता आये ऐसी स्वाभाविक भूमिका तैयार होती है। बुद्धि में समत्व आने से उसकी धारणा उसमें अखण्ड रूप में बनी रहती है। अहं जो पहले जीवदशा में द्वन्द्वादिक और गुणादिक विषयों में बना रहा करता है, वह अब उसमें से अटककर चेतन के प्रति ज्ञानप्रेरक अभ्यास में गति करने को प्रेरित करता रहता है।

जप में श्रद्धा आवश्यक है। यों तो हरेक में कुछ न कुछ साकार करने के लिए उस विषय में कर्म को परिपूर्ण रूप से उतारने के लिए उस कर्म के प्रति श्रद्धा अनिवार्य है। ऐसी श्रद्धा के बिना ऐसा होना संभव नहीं है।

जप से जन्मी हुई श्रद्धा को प्राण से जो अनुभव हुआ उसे अक्षरदेह में रखा है। उसे पढ़ते-पढ़ते जप विषयक कितना गहरा अभ्यास हुआ है, वह समझ में आने लगता है। इस जप विषयक लेख अध्ययनपूर्ण और ज्ञानयुक्त भी है। जप के सभी पहलुओं का चिंतन किया गया है। यदि जप की भावना में प्रवर्तित न हुआ होता तो ऐसा शायद न हो पाता।

जप यह अमोघ दैवी शक्ति है। जिन्होंने ने उसके प्रयोगों में अपना सर्वस्व न्योच्छावर कर डाला है और उसमें सभी प्रकार से, सब भाव से समर्पण किया हो ऐसे प्रयोगवीरों को भी समाज क्वचित ही समज पाता है, तो फिर अनुभव तो कैसे कर सकता है ?

‘जीवनस्मरणसाधना’

प्रस्तावना से

॥ हरिःॐ ॥

॥ हरिःॐ ॥

हरिःॐ आश्रम

‘श्रीभगवान की अनुभूति के हेतु पावन स्थल’

लेखक :

(Ph.D.)

अनुवादक :

(Ph.D.)

संपादक :

हरिःॐ आश्रम प्रकाशन, सुरत

■
॥ हरिःॐ ॥

आरती

ॐ शरणचरण लीजिए, प्रभु शरणचरण लीजिए
पतित को उबार लीजिए (२) कर पकड़ हृदय लगा लीजिए...
ॐ शरणचरण.

मन-वाणी के भाव आचरण में उतरे प्रभु (२)
मन, वाणी और दिल को (२) कृपा कर एक करें...ॐ शरणचरण.

सभी स्वजनों के साथ, दिल में सद्भाव जगें, प्रभु (२)
भले अपमान हुए हो (२) तब भी भाव बढ़ें...ॐ शरणचरण.

हीन प्रकार की वृत्ति; ऊर्ध्वगमन करें, प्रभु (२)
प्रभुकृपा से मथन करावें (२) चरणशरण पाने...ॐ शरणचरण.

मन के सकल विकार, प्राणयुक्त वृत्ति, प्रभु (२)
बुद्धि की सभी शंकाएँ (२) चरणकमल में द्रवित हो...ॐ शरणचरण.

जैसे भी हो प्रभु, वैसे ही दीखें, प्रभु (२)
मति मेरी खुली रहे (२) स्पष्ट ही परखें...ॐ शरणचरण.

दिल में कुछ भरा हो, उससे सब उल्टा, प्रभु (२)
मुझसे कभी न हो (२) ऐसी मति दें...ॐ शरणचरण.

जहाँ जहाँ गुण और भाव, वहीं दिल मेरा टिके, प्रभु (२)
गुण और भाव की भक्ति (२) मेरे दिल में संचरित करें...ॐ शरणचरण.

मन, मति, प्राण प्रभु । तुम्हारे भाव में तल्लीन रहे, प्रभु (२)
दिल में तुम्हारी भक्ति में (२) उमंगें-तरंगें तरंगित करें...ॐ शरणचरण.